त्रैमासिक

चन्द्रताल

अंक 2

वीरों में वीर
बलदेव घरसंगी

लाहुल-स्पिति की साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका

रू० 15.00 अक्तूबर-दिसम्बर 1994

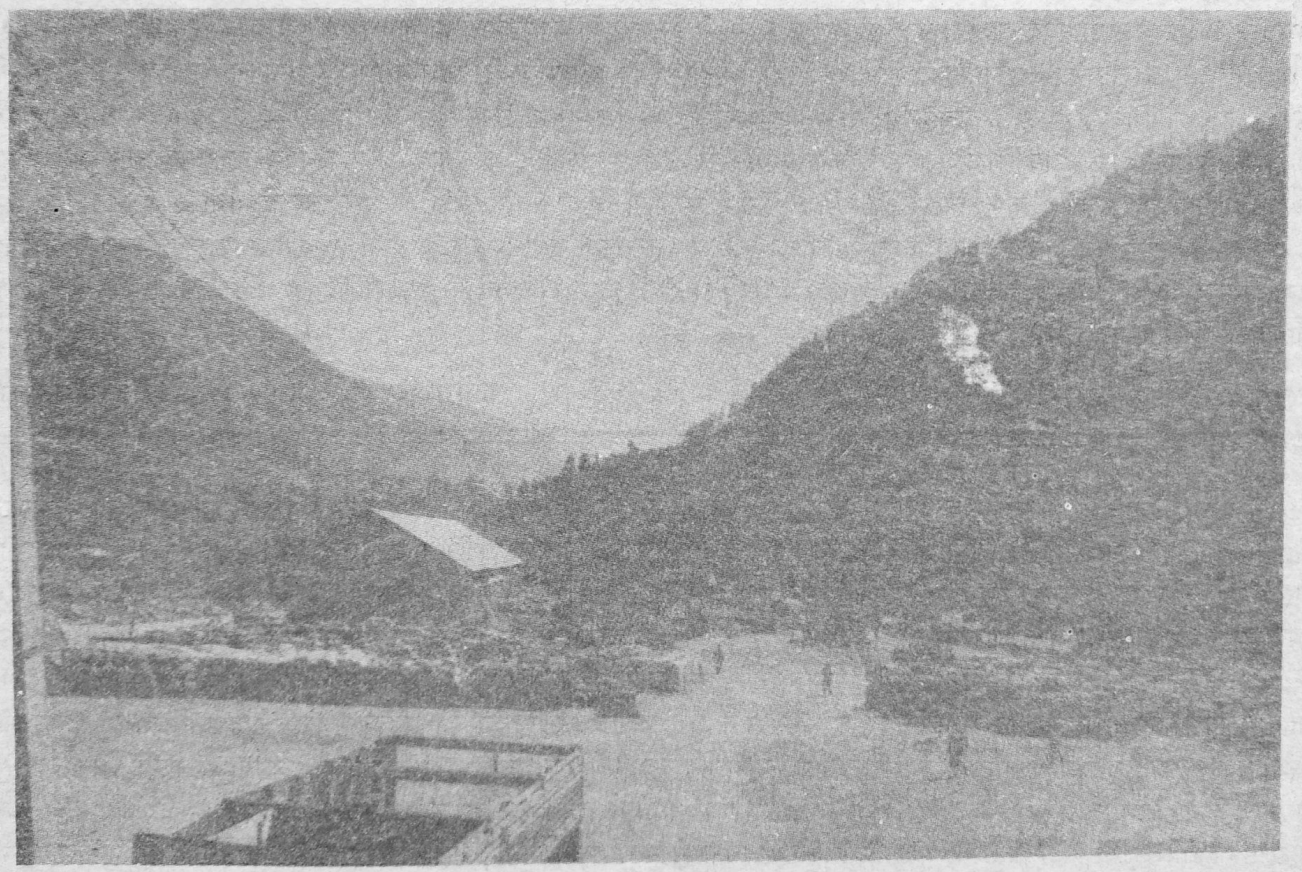

आलू सोसाईटी
अन्तर्विरोध या पतन ?

कामना

कहा गया है कि शून्यता एवं प्रज्ञा की विधि को यथार्थ रूप से न जानने के कारण प्राणी संसार में भटकते रहते हैं। करूणा से युक्त उपाय तथा अनेक युक्तियों के द्वारा भगवान बुद्ध दु:खी प्राणियों को सन्मार्ग में प्रवेश कराकर भवसागर से मुक्त करते हैं। संसार में प्राणी भावों की स्थिति के तत्व को यथार्थ रूप में न जानने के कारण संसार से मुक्त नहीं हो पाते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महाकारुणिक तथागत ने समस्त दु:खी सत्वों के लिए प्रज्ञा और उपाय का प्रवचन प्रदान किया है तथागत ने विनयजनों की अभिलाषाओं के अनुसार बौद्ध धर्म के हीनयान, महायान तथा वज्रयान के उपदेश दिए हैं। ये तीनों यानों की व्यवस्था एक व्यक्ति को बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए हैं। इन तीनों यानों का सारांश प्रतीत्य समुत्पाद की दृष्टि एवं अहिंसा की चर्या है। इन दोनों विषयों में सम्पूर्ण बौद्ध धर्म का उपदेश ग्रहीत किया जा सकता है बौद्ध दृष्टि एवं चर्या को अच्छी तरह से समझ कर अभ्यास करने से ही उचित लाभ सम्भव होता है। इन दो प्रमुख विषयों का अभिधेय बुद्ध के आगम एवं बौद्ध आचार्यों के शास्त्र हैं। इनके सम्यक् अध्ययन से बौद्ध धर्म, दर्शन एवं तन्त्र को ठीक से समझा जा सकता है। शाक्य मुनि के आगम एवं बौद्ध आचार्यों के शास्त्रों का श्रवण, चिन्तन तथा भावना करने से मनुष्य का जीवन सफल बन सकता है।

आधुनिक युग के नवयुवकों की रूचि के अनुसार इस प्रकार की पत्रिका का प्रकाशन करना अधिक अनुकूल लगता है। आज के परिवर्तन के युग में इसका विशेष प्रयोजन है। क्योंकि हिमालय क्षेत्रों विशेष कर लाहुल घाटी की संस्कृति और धर्म को बचाने में इस पत्रिका का प्रकाशन करना विशेष लाभदायक होगा। आज परिवर्तन के युग में इस तरह की पत्रिकाओं का प्रकाशन करना बहुत ही आवश्यक है। लाहुल घाटी के धर्म तथा संस्कृति की अवनति को देखकर अपनी संस्कृति के कुछ प्रेमियों ने इस पत्रिका के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ करने का काम अपने हाथ में लिया है। इससे लाहुल घाटी में बौद्ध विद्याओं की रक्षा एवं विकास का कार्य अवश्य ही होगा। आधुनिक नवयुवको को भी अपनी संस्कृति के विषय में पर्याप्त ज्ञान की सामग्री उपलब्ध हो सकेगी। 'चन्द्रताल' नामक इस नई पत्रिका के माध्यम से बुद्ध शासन को विकास एवं प्राणियों का कल्याण अवश्य ही होगा। यह कार्य बौद्ध विद्याओं के अध्ययन एवं प्राचीन सभ्यता को स्थिर रखने में भी लाभदायक सिद्ध होगा। गलत कार्य करने वालों को सही पथ पर लाने तथा अपनी बहुमूल्य संस्कृति का पुन: विकास कर दीर्घ काल तक इसे जीवित रखने में यह पत्रिका मूलभूत आधार बनेगी। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। इस महत्वपूर्ण पत्रिका के प्रकाशन की सफलता के लिए मेरी शुभ कामनाएं हैं।

काग्युर रिनपोछे (तनज़िन लुड.तोग तनपे ग्यलछ़न)

तृतीय काग्युर गुरु परम्परा के अवतार के रुप में आगम अधिगम शासन ध्वज (लुड. तोंगस ब्सतान पई ग्यलछ़न) तदनुसार 18 मई 1968, शनिवार के दिन 2 बजकर 15 मिनट पर हिमाचल के मनाली, ज़िला कुल्लू में लाहौली विष्ट कुल में पिता बिशन दास ठाकुर और माता छिमेद् डोलकर (तिब्बती मूल) के यहां पैदा हुए। तीन वर्ष की अल्प आयु में ही इन्हें पूर्व संस्कारों के स्मरण व अन्य परीक्षणों के आधार पर काग्युर रिम्पोछे के अवतार के रुप में पहचान लिया गया। इस प्रकार 1975 में दक्षिण भारत के श्रीधान्यकटक विहार में प्रवेश ले कर अवकाश प्राप्त उपाध्याय भट्टारक पद्मा ग्यलछ़न जी के चरण कमलों में बैठ कर पंच महासूत्र विधायों का प्रारम्भ से अध्ययन किया। 1985 में गुरु जी के परिनिर्वाण को प्राप्त होने के उपरान्त विनय शास्त्र और अभिधर्मकोश, चतु:शतक, मूलमाध्यमिककारिता आदि सम्पूर्ण शास्त्रों का उपाध्याय भट्टारक शग कोर जिमा ग्यलछ़न (अर्कध्वज) से अध्ययन किया। इन्होंने क्रमश: शब्दकोश, व्याकरण और काव्य से लेकर इतिहास और पंचमहासूत्र विधायों का गम्भीर अध्ययन किया। ये प्रारम्भिक कक्षा से लेकर जितनी भी परीक्षाएं विहार में होती थीं, उनमें सदा प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे। तीन महाविहारों में उच्च स्थान प्राप्त करने वाले 100 प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की परीक्षा में भी ये सर्वप्रथम रहे। "प्रासंगिक एवं स्वतान्त्रिक माध्यमिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन" विषय पर अनुसंधान करने में लीन रहने के उपरान्त वर्तमान में ये ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी लन्दन में अंग्रेज़ी का अध्ययन कर रहे हैं व भविष्य में उत्तरोत्तर अध्ययन हेतु अटलांटा युनिवर्सिटी यू०एस०ए० जाने का विचार है। गुरु जी ने करुणा नाम से एक स्वेच्छिक संस्था की स्थापना भी की है जिसके अन्तर्गत गुरुकुल पद्धति अनुसार शिक्षा दी जाएगी।

❐ सम्पादक

संस्थापक
स्वंगला एरतोग
लाहुल-स्पिति कला व संस्कृति उत्थान हेतू सोसाईटी (रजि०) संख्या ल स/42 / 93 सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21,1860.

मुख्य संपादक
सुश्री डा० छिमे शाशनी

उप संपादक
बलदेव कृष्ण घरसंगी

संपादक मण्डल
के० अंगरूप लाहुली
आचार्य प्रेम सिंह, तोबदन.

सम्पर्क
मुख्य संपादक-चन्द्रताल
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय,
कुल्लू (हि० प्र०)

उप संपादक-चन्द्रताल पोस्ट बाक्स 33
मनाली-175131 (हि० प्र०)
वितरण प्रबन्धक:
रणवीर चन्द ठाकुर 19, फैशन सैन्टर मॉडल टाउन मनाली -175131 (हि० प्र०)
प्रकाशक एवं मुद्रक
श्री सतीश कुमार लोपा द्वारा
'स्वंगला एरतोग सोसाईटी (रजि०) के लिए
मॉर्डन स्टेशनर्स,
दुकान नं० 5, संकन गार्डन, शॉपिंग कॉम्पलैक्स मण्डी हि० प्र० द्वारा लेज़र टाईप सैटिंग व मुद्रित:- Ph. 22544
चन्द्रताल त्रैमासिक
वार्षिक शुल्क : पचास रूपये
एक प्रति : पन्द्रह रूपये

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं

आवरण डिज़ाईन व फोटो : घरसंगी

क्रम

1. संपादकीय
2. पाठकीय
3. कसौटी
4. कविता
   - एक फूल — रंजीत सिंह शाशनी
   - मैं और मेरी ज़िन्दगी — डॉ० रंजीत वेद
   - क्रांति का इन्तज़ार — सुरेश राणा 'रवि'
5. क्षेत्रीय दृष्टि
6. आवरण कथा
   - लाहुल आलू सोसाईटी अन्तर्विरोध या पतन?
7. इतिहास प्रसंग
   - वीरों में वीर — बलदेव घरसंगी
8. संस्मरण
   - रोहतांग पर तेतीस घन्टे — शेर सिंह
9. लोक गाथा
   - चेपि की मृत्यु — सतीश लोप्पा
10. समाज
    - संयुक्त परिवार का विघटन — राहुल ठाकुर
11. संस्कृति
    - सुरजणी मेला योर — प्रेम सिंह 'शोंडा'
    - स्पिति क्षेत्र के संस्कृति की विवेचना — कृष्ण कुमार
12. बहस
    - लाहुल की सांस्कृतिक अस्मिता:पूर्वाग्रह, चुनौतियां और उत्तरदायित्व — अजय
13. जनचेतना
    - साक्षरता, शिक्षा एवं जागरुकता — रुप सिंह ठाकुर

सम्पादकीय

पत्रिका के प्रथम अंक के पश्चात द्वितीय अंक भी किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के बिना समय पर पाठकों को उपस्थित करते हुए आत्म-सन्तोष तथा प्रसन्नता होती है। प्रथम अंक के सामने आते ही इसका व्यापक स्वागत हुआ है और जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रतिक्रिया मिली है, वह हमारे लिए सदा उत्साह जनक तथा प्रेरणा-दायक बनी रहेगी। प्रशंसा के अनेक पत्र मिले हैं। जिन महानुभावों ने इसे सराहा है; उनका हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद करते हैं। इस प्रकार लेखक, प्रशंसक और पाठक का सम्पादक-मण्डल से उक्त सत्कार्यार्थ जुड़ना शुभ लक्षण का द्योतक है। अधिक से अधिक की सन्तुलित भागीदारी कार्य करने वालों का आत्म विश्वास जगाती है और कार्यक्षमता बढ़ाती है। यद्यपि पत्रकारिता की योग्यता तथा पूर्वानुभव के बगैर ही इस सम्पादन कार्य का बीड़ा उठाना अन्धेरे में हाथ चलाने के समान था। तथापि लोगों की शुभकामना और प्रभू की अपार कृपा से पाठकों ने इसे ठीक ही पाया है।

पत्रिका सम्पादन का तकनीकी ज्ञान निरन्तर अपेक्षित है। इसलिए इस ओर किसी का रचनात्मक सुझाव नहीं मिला। कमियों, दोषों की ओर किसी का भी संकेत मात्र भी मिल जाए तो वह हमारे लिए सही मार्गदर्शन होगा।

पूरी पत्रिका में एक "लाहुल अतीत के झरोखे से" शीर्षक वाले लेख के अन्तर्गत छपे आलोकचित्र का परिचय वाक्य "लाहुल के गौरवमय इतिहास के दो सुपूत, जिन पर लाहुल को गर्व है" के सम्बन्ध में अनौचित्य का एक महानुभाव ने संकेत करने का साहस किया है। हम उस के अत्यन्त आभारी हैं। यद्यपि यह परिचय वाक्य उन जैसे जन-नेताओं के लिए अपने आप में कोई बुरा नहीं है। जिन्होंने कठिन परिस्थिति में मूलभूत तथा दूरगामी परिणामोन्मुख जनहित का काम किया है। तथापि स्वंय लेखक इन में शामिल होने के कारण अपने आप अपने बारे में इस प्रकार के वाक्यों का वरण करना स्वभावत: औचित्य नहीं रखता है। प्रकारान्तर से यह आत्मश्लाघा ही लगता है परन्तु इस सम्बन्ध में हम खुले मन से अपनी भूल को स्वीकार करते हैं कि प्रकाशन के समय यह आलोक-चित्र सामने आया तो पूर्वा पर विचार किये बिना अनजाने में लिख दिया गया। लेखक ने न ही यह वाक्य लिख कर दिया है और न ही सुझाया है।

मानव-मन सदा शंकालु होता है। किसी के किसी भी काम को देख कर ननु और न च करना उस की प्रवृति होती है। "प्रयोजनमनुद्देश्य मन्देऽपि न प्रवर्तते" अर्थात बिना मतलब के मूर्ख भी किसी काम को नहीं करता; इस वाक्य का सहारा लेकर वह इस संगठन के किसी एक या सामूहिक सदस्यों पर धन कमाने या अन्य स्वार्थ साधने का शक कर सकता है। परन्तु गुण-दोष की समीक्षा किये बिना समय से पहले चित में भ्रांति पाल लेना इस पवित्र कार्य के साथ अन्याय करना होगा। हम सब का एक ही स्वार्थ है कि सांस्कृतिक धरोहर को मिटने से बचाना, विचार शक्ति को बढ़ाना, आत्मोत्कर्ष करना और विशेष कर नई पीढ़ी को लेखन कार्य के द्वारा कलम के धनी बनने के लिए मौका देना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पत्रिका हमारी आकांक्षाओं के अनुरुप खरी उतरे और गुणवता में अपना स्तरीय स्थान बना ले। पत्रिका अपने आप में कुछ नहीं है। लेखक, सम्पादक और पाठक की क्रियाशीलता ही इस का अस्तित्व है। इन तीनों घटकों के एक दूसरे के कार्यो के प्रति समन्वयात्मक तथा सन्तुलित सक्रियता होने पर ही इस का प्रचार प्रसार तथा विकास व्यापक रुप में होना निर्भर है। यह तभी सम्भव है जब व्यापक दृष्टि कोण और उदारचेता के साथ हम सब यह मान कर चलें कि यह किसी एक की अथवा किसी वर्ग की निजी सम्पति नहीं है। बल्कि सांझा धन है। इस के योग-क्षेम का उत्तरदायित्व सब के ऊपर बराबर है। इस से जुड़े व्यक्ति चाहे लाहौल-स्पीति में रहे, चाहे कुल्लू-मनाली, शिमला, चण्डीगढ़ या दिल्ली में उनकी ईमानदारी और निष्ठा से किये योगदान का महत्व है और लोग इसका कदर करेगें। कई बार कुछ लोग पूर्वाग्रह के जकड़न में स्थान या व्यक्ति पर नाक-भौं चढ़ाते हैं।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा गया है कि आय व्यय की बराबरी पर पत्रिका को ग्राहकों के हाथों में पहुंचाने की सैद्धान्तिक नीति अपनाई है। लेकिन कठिनाई यह है कि निर्धारित राशि के बिना ही पत्रिका चलाने का जोखिम भरा काम करने का साहस कर लिया है। साधारणतया लोगों का चर्चा करना स्वभाविक है कि मार्कीट में स्तरीय पत्रिकाओं की तुलना में इस का मूल्य

15/- रुपये प्रति अंक अधिक बैठता है। यह समस्या ज़रुर है। परन्तु इतनी विकट नहीं। इस का एक सरल और स्पष्ट समाधान है कि जिस गति से पाठक और ग्राहक की संख्या बढ़ती है उसी गति से मूल्य में न्यूनता आती है और पत्रिका सस्ती मूल्य में मिल जाएगी। क्योंकि प्रकाशन का कुल व्यय पत्रिका की अधिक संख्या में विभक्त होने पर समुचित मूल्य पड़ता है। इसलिए सभी शुभचिन्तकों, हितेशियों से अनुरोध है कि अपने मित्रों, सम्बन्धियों और परिचितों को अपने सम्पर्क और प्रभाव से अधिक से अधिक ग्राहक बना कर इस सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के कार्य में अपने योगदान की मोहर लगायें।

बहुत से लोगों ने स्वत: ही सम्पर्क स्थापित करके अपना अशंदान धन राशि के रुप में करने की इच्छा व्यक्त की है। हम उन की इच्छा का बड़े ही गर्म जोशी के साथ स्वागत करते हैं। उनका कहना है कि उन्हे भी इस में सम्मिलित किया जाय। सम्मिलित करने या न करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। जब कि उल्लेख कर चुके हैं कि यह हमारी सांझा धन-सम्पति है। सब का उत्तरदात्वि अपनी क्षमता, योग्यता तथा प्रतिभा के अनुसार यहां सम्माननीय होगा। इस सम्बन्ध में उन महानुभावों की भावनाओं का आदर करते हुए उन्हें इस सूचना से अवगत कर देना चाहते हैं कि जो व्यक्ति अपने सामर्थ्य के अनुसार जितना ही धन इस कार्य के लिए दे उस को पत्रिका के हर अगले अंक में नाम पता और धन को प्रकाशित करने की योजना तैयार कर ली है। पूर्वांक में कुल योग को अगले अंक में दिखाकर सार्वजनिक तौर पर उस धन का लेखा जोखा रखा जाएगा।

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष और लिखित या मौखिक जो भी इस सम्बन्ध में चर्चा होती है। जहां तक हम से हो सका उस का उत्तर, स्पष्टीकरण, भ्रांति-निराकरण करना अपना कर्तव्य समझते हैं इसी क्रम में मौखिक तौर पर एक सुझाव आया है कि हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रंजी माध्यम में लेख प्रकाशित करने के लिए एक खण्ड रखा जाए। ताकि लेखन-कार्य में और भी लेखक सम्मिलित हो सकें और किसी की अभिव्यक्ति में भाषा का अड़चन आड़े नहीं आना चाहिए। पत्रिका के प्रकाशन से पूर्व ही इस सम्बन्ध में सम्पादक मण्डल में विस्तार से विचार-विमर्श हुआ है अभी इसी के सुचारु रुप में चलाने के लिए हम स्वंय आश्वस्त नहीं हैं। अनुकूल स्थिति तथा कार्य की सुगमता को ध्यान में रख कर इस प्रकरण को खोला जा सकता है। पत्रकारिता के तकनीकी को इस सम्बन्ध में जांचा जाना भी अनिवार्य आवश्यकता है।

इस अंक में तीन और नई कड़ियां जोड़ी हैं। सम्भवतया यह प्रयास आपको रुचि कर लगेगा। प्राय: अधिकतर पाठक अपने आस-पास की घटनाओं को पढ़ने में अधिमान देता है। इसी रुचि को केन्द्र-बिन्दु में रख कर "क्षेत्रीय-दृष्टि" शीर्षक को स्थाई स्तम्भ दिया है।

इस के अतिरिक्त समसामयिक विषयों पर विश्लेषणात्मक लेख को "कसौटी" नाम दिया है इस सम्बन्ध में लोगों की टिप्पणियां भी आमत्रिन्त करते हैं। जो तीसरे स्तम्भ "पाठकीय" में प्रकाशित करने का प्रावधान रखा है। इस तरह हम अधिक से अधिक लोगों को सम्मिलित करना चाहते हैं। आशा है कि आप का सहयोग हमें अवश्य मिलेगा।

यह सर्व विदित है कि लाहौल एंव स्पिति के जन-जीवन से सम्बन्द्ध कोई भी क्रिया-कलाप तथा सांस्कृतिक गतिविधियां लिखित नहीं हैं। भौगोलिक स्थितियों तथा उपबोलियों के कारण स्थान और समय के अनुसार उन में कुछ न कुछ भिन्नताएं हैं। इनमें से कुछ अब भी जीवित हैं और कुछ क्षेत्रीय वयो-वृद्धों के मुख-ज़वानी सुरक्षित है। बहुत सा अंश विस्मृति के गर्त में विलीन हो चुका है। ऐसी स्थिति में उक्त विषय को लेकर पूर्ण तथा तारतम्य रख कर लेख लिखना लेखक के लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। फिर भी जहां तक हो सके इस प्रकार का लेख लिखना महत्वपूर्ण रहेगा और स्वागत योग्य होगा। इस प्रकार के सांस्कृतिक तथा उक्त क्षेत्र के जीवन सम्बन्धी लेख को पढ़ कर विज्ञ महानुभावों, विद्वानों तथा बुद्धिजीवियों से आशा है कि वे तर्क पूर्ण, युक्तिसंगत और तथ्यों के आधार पर कहीं छूटे अशों, कहीं अतिरंजित प्रकरणों तथा कहीं भिन्नताओं को उजागर करने का कष्ट करेगें। चाहे वह एक स्वतन्त्र लेख हो, चाहे एक खण्ड, चाहे कुछ वाक्यों का समूह हो, को पत्रिका में उचित स्थान दिया जाएगा। कृपया इतना ध्यान रखा जाए कि आप अपने विचारों के आक्षेपात्मक न बना कर तथ्यात्मक शैली में लिखें। इस प्रकार का संशोधन, सम्वर्धन या परिवर्तन किया हुआ लेख भविष्य में एक प्रामाणिक और ऐतिहासिक सांझा दस्तावेज़ (साक्ष्य पत्र) बन जाएगा।

पत्र

चन्द्रताल की पहली कड़ी अति सुन्दर व काफी लम्बी व चौड़ी चादर को ढकती हुई एक लम्बे सफर के शुभ आरम्भ के लिए आप सब को बधाई। यही दिशा है जिस ओर हम सब को आगे कदम बढ़ाने की आवश्यकता है। क्रम काफी सोच विचार करके चुना गया है। साथ ही क्रम लाहुल के भिन्न-२ पहलुओं को उत्तम तरीके से प्रस्तुत करता है। एक उत्तम पग।

■ कर्नल प्रेम
मनाली

स्वांगला एरतोग द्वारा संचालित 'चन्द्रताल' जो लाहुल-स्पिति की साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका है, त्रैमासिक के प्रवेशांक को पढ़ने का मौका मिला और पाया कि यह एक ऐसा पौधा है जो अभी तीन महीने का हो चुका है। और अपने परिपक्व विचारों से, आर्शीवाद से तथा अनुभवों द्वारा लाहुल-स्पिति की संस्कृति की सुषुप्त खुशबू को चारों ओर निखरने में कोई कमी न रखेगें वहां दूसरी ओर युवा लेखकों को इस खुशबू को और अधिक दूर तक ले जाने में अपना सहारा भी देंगें।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि 'चन्द्रताल की ठंडी एवं स्वादिष्ट जलधारा का रसास्वादन करने का उचित अवसर न केवल लाहुल-स्पिति परन्तु पूरे हिमाचल प्रदेश तथा इससे भी दूर पूरे हिमालय क्षेत्र में रहने वाले सभी युवा एवं बुजुर्ग लेखकों एवं पाठकों को भी मिले। 'चन्द्रताल' वह मंच साबित होगा जिस द्वारा बुजुर्ग लेखको के सुलझे विचारों से हर नर-नारी ओत-प्रोत होगा ही, वहां युवा लेखकों को अपनी प्रतिभा को उभारने का मौका मिलेगा। लाहुल-स्पिति एवं पूरे हिमालय क्षेत्र के समृद्ध सांस्कृतिक एंव धार्मिक परिवेश में लेखन प्रतिभा को उभारने का जो साहसिक कदम 'स्वांगला एरतोग' द्वारा उठाया गया है बहुत ही सराहनीय है। इस प्रयास को निरन्तर सफलता प्रदान करने के लिए मेरा युवा लेखकों से अनुरोध है कि वे अपनी प्रतिभा को न दबाएं वरन् उभारें तथा निखरने का मौका दें। जो भी कृतियां वे प्रस्तुत कर सकें। परन्तु अपनी कृतियों में मौलिकता को बनाए रखते हुए पूरे हिमालय क्षेत्र की संस्कृति, दर्शन, धर्म और स्वच्छ पररम्परा का रसास्वादन सभी पाठकों को कराने का प्रयत्न करें। 'स्वांगला एरतोग' को मेरी हार्दिक बधाई

■ शेर सिहं (निवासी गांव गूंधला) रा० उ० मा० पा० गोशाल (बाहंग) ज़िला कुल्लू

चन्द्रताल त्रैमासिक पत्रिका के जन्मदातास्वांगला एरतोग के सभी सदस्यों को मेरी ओर से हार्दिक बधाई व शुभ कामनाएं।

चन्द्रताल पत्रिका का पहला संस्करण पढ़ा व अत्यन्त प्रसन्नता का आभास हुआ, और कुछ लेखों ने तो मुझे सचमुच झकझोर कर रख दिया। इन में खास कर श्री शिव चन्द ठाकुर का इतिहास प्रसंग तथा संस्मरण "और फिन्च दक्षिण की और उड़ गई।" इन के साथ साथ व्यंग्य लेख "कहां खो गये सब फूल" भी अति रोचक पाया।

मैं अपने हृदय की गहराईयों से चन्द्रताल पत्रिका की दीर्घ आयु की कामना करता हूं तथा इस की लोक प्रियता दिन व दिन बढ़ती जाएगी ऐसी मेरी आशा है।

रोशन थोरंगपा
सहायक सेनानी
भा० ति० सी० पु० 9 ब०

सर्वप्रथम मैं आप को और आपके सहयोगियों को बहुत-२ बधाई देता हूं कि आपने इतिहास, कला, साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका "चन्द्रताल" जारी करके लाहौल स्पिति की जनता की बहुत बड़ी ज़रुरत को पूरा किया है, पत्रिका में दी गई सामग्री से प्रतीत होता है कि यह हिमाचल प्रदेश से निकलने वाली हिन्दी पत्रिकाओं में अपना यथोचित स्थान बनाएगी। "लाहौल अतीत के झरोंखे से" इतिहास प्रसंग पढ़ा। इसने सचमुच में ही एक क्रांतिकारी भावना को जागृत किया है। जिस लाहुल रुपी पौधे को इन्होने इतना बड़ा पेड़ बनाया है। हम इसकी तन-मन-धन से रक्षा करेंगें। "चन्द्रताल" के सुन्दर प्रकाशन के लिए मेरी बधाई स्वीकारें।

पुन: पुन: हार्दिक बधाईयां!

■ सुरेश राना "रवि"

आप की ओर से भेजी गई "चन्द्रताल" त्रैमासिक पत्रिका मुझे प्राप्त हुई प्रवेशांक बड़ा गरिमा पूर्ण बन पड़ा है। "स्वंगला एरतोग" नामक संस्था का प्रयास बड़ा प्रशंनीय है जिस ने उपयुक्त त्रैमासिक पत्रिका के माध्यम से लाहुल-स्पीति की लोक कला, साहित्य, संस्कृति को संरक्षित, पुन: स्थापन एंव उन्नयन के प्रति कृत संकल्पपूर्ण पग उठाया है। यह बहुत बड़ा कार्य है, है भी निष्काम जिसकी पदयात्रा में बहुविध कठिनाईयां हैं। सामूहिकता में कठिन भी कार्य आसान होता है। मुझे आशा है, कि इस संक्रमणकाल में यह पत्रिका बहुत कुछ भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखने में महनीय कार्य करेगी।

पत्रिका में इतिहास प्रसंग, लोकगाथा, पर्यटन, कला संस्कृति आदि से सम्बन्धित सभी विषय पठनीय हैं। इस के लिए

"चन्द्रताल" से जुड़े सभी कर्मियों के लिए मेरा वर्धापन।

सीता राम ठाकुर

ज़िला भाषा अधिकारी, मण्डी

चन्द्रताल का प्रवेशांक मेरे हाथों में है। सर्व प्रथम मैं सभी को यानि जो इस पत्रिका से जुड़े हैं अपनी ओर से हार्दिक धन्यवाद, बधाई एंव शुभ कानाएं।

आपने प्रवेशांक में कमियां बताने को लिखा है। हर विषय, उन का प्रकाशन बहुत ही अच्छा है। हां एक मामूली सी कमी मैं यह महसूस कर रहा हूं कि ठा० शिव चन्द के लेख में जो फोटो दिया है, ठा० देवी सिंह और ठा० शिव चन्द का, साथ में नीचे लिखा है लाहौल के दो सपूत। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह दोनों लाहौल के सपूत हैं। मगर इस फोटो की जगह गलत है क्योंकि लेख खुद शिव चन्द जी का है। अगर लेख आप का होता तो फोटो की यह जगह ठीक थी। अत: इस फोटो को और नीचे लिखे आप के विचार पत्रिका के किसी दूसरे पृष्ठ पर होता तो अच्छा रहना था।

डॉ० रनजीत वैद

उदयपुर लाहौल-स्पीति

क्रांन्ति का इन्तजार,

खत्म हो गया अब क्रांन्ति का इन्तजार,
क्रांन्ति को साथ अपने लाई है "चन्द्रताल"।
यौवन की भट्टी में तपे,
शब्दों के जिस्म!
आतुर है,
क्रांन्ति मिलन को,
अब न रोको।
जिसके लिए अश्रु बहाए थे बार-बार
गले लगा के साथ अपने लाई है "चन्द्रताल"
रोशनियां जाग उठी हैं,
दिख रही है अब,
ज़िन्दगी की काली स्लेट।
बेताब है रोती कलम,
अमिट अक्षरों का
पैगाम लिए,
अब तो चलो।
जिस दिये को तरस रहा था यह अबोध अन्धकार
हथेली में सजा लाई है उसे "चन्द्रताल"।
अभी तो सूर्योदय हुआ है,
देखूंगा जीवन की पहली सुबह,
सिमट गई युगों की दूरियां,
अब होगा प्रकाशन,
तेरी दशा और मेरी व्यथा का,
अब तो मुस्कुराओ।
जिस दर्द से "रवि" तूने रोये हैं, खोये हैं अपने साल,
उस दर्द की दवा बनके आई है "चन्द्रताल"।

सुरेश राना "रवि"

एक प्रणाली का सृजन

इस में कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि हॉप सोसाईटी अपने लक्ष्यों से हट कर कोई काम कर रही हो लेकिन यह बात भी विचारणीय है कि वर्तमान स्थिति में वह विपणन व विधायन में कार्यकुशलता लाने के लिए क्या-२ कर रही है? लाहुल के हॉप उत्पादकों के खेतों में सूख रहे हॉप को देखते हुए हम क्या अनुमान लगा सकते हैं! हॉप सोसाईटी अगर इसी तरह मूकदर्शक बनकर घटनाओं को देखती रही तो फिर शरारती तत्वों द्वारा किल्न और हॉप्स सोसाईटी की सम्पत्ति पर हमले होते रहेंगें। यह कानून व्यवस्था का सवाल नहीं है बल्कि एक पुख्ता प्रणाली के सृजन का मुद्दा है। जब तक हॉप सोसाईटी अपने आप में विधायन क्षमता नहीं लाती और विपणन का भार अपने ऊपर नहीं लेती, इस की दशा एक मूकदर्शक की ही रहेगी। एक संस्था के रुप में इसे पूर्वाभास होना चाहिए कि आने वाली कठिनाईयों का और अपने भीतर इन से लड़ने की क्षमता का भी भान होना चाहिए, इसी पर आधारित उसका अगले साल का प्लान होना चाहिए और किसानों को अवगत करा देना चाहिए कि वह इतने माल ही का विधायन कर सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मेम्बर पर अंकुश होना चाहिए कि उस का इतना उत्पाद ही विधायन के लिए स्वीकार्य होगा। यह अकुंश उस सूरत में होगा जब हॉप सोसाईटी किसी भी सूरत में और विधायन क्षमता पैदा नहीं कर पाए। लेकिन जहां तक हॉप उत्पाद के विपणन का सवाल है तो सब से पहले यह जानना जरुरी है कि हॉप एक औद्योगिक उत्पाद है जिस का उपयोग बियर बनाने में होता है। लाहुल वाले हॉप उगाएं या न उगाएं ब्रीबरीज़ ने बियर का उत्पादन करना ही है और हॉप जो इस का एक महत्वपूर्ण अंग है, को कहीं से भी खरीदना ही है। इस तरह लाहुल में हॉप का जितना ज़्यादा उत्पादन होगा उतना ही विपणन आसान होगा लेकिन इस के लिए हॉप सोसाईटी को खुल कर सामने आना होगा और अन्तर्राष्ट्रीय हॉप उत्पाद विपणन आंकड़ों से वाकिफ होना पड़ेगा और 'एक सोसाईटी एक ब्रीबरी'की नीति को बदलना पड़ेगा। लेकिन हॉप सोसाईटी की सब से बड़ी कमज़ोरी उस की विधायन अक्षमता है। जिससे गुणवत्ता पर नियंत्रण अपने हाथ में रहता नहीं और इस तरह यह अपने ब्रांड का एक नाम नहीं बना पा रही है। जो कि मार्केट प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग है। दूसरी बात जो महत्वपूर्ण है, यह है कि इस पतझड़ में हॉप सोसाईटी हॉप उत्पादकों के अगले साल में होने वाली फसल का सर्वे करें और अगले साल का एक अनुमानित आंकड़ा लेकर उतने हॉप के विधायन व्यवस्था की अभी से तैयारी करे जिससे बारिंग वाली स्थिति फिर पैदा न हो।

हॉप सोसाईटी को अब 'शैशव काल-सिन्ड्रोम' छोड़कर एक परिपक्व युवा स्फूर्ति के साथ मैदान में आना चाहिए और एक परिपक्व युवा की तरह सारी ज़िम्मेवारी अपनेऊपर लेकर एकनई प्रणाली का सृजन करना चाहिए जिसके लिए व्यावसायिकता बहुत ही आवश्यक है।

सफलता की राह

अच्छी सड़कें, सक्षम संचार व्यवस्था, ढेर सारा विद्युत और विमान पत्तन, यही चीज़े हैं जो किसी इलाके की आर्थिक उन्नति का आधार हैं। इनमें से किसी एक में शार्ट कट लेने की कोशिश हो तो प्रगति की सभी योजनाएं धरी की धरी रह जाती हैं।मनाली में 26 से 28 अगस्त को हिमटेब (हिमालयन टूरिज़म एडवाईज़री बोर्ड), पर्यटन व उड्डयन मंत्रालय के अन्तर्गत एक विभाग, का सेमीनार सम्पन्न हुआ। जहां यह बात सामने आई कि कैसा इन्फ्रासट्रक्चर तैयार किया जाए जिस से हिमालयी राज्यों में पर्यटन का विकास हो जो साथ ही साथ पर्यावरण का दोस्त भी हो। यहां यह बात खुल कर सामने आई कि हिमटेब व पर्यटन मंत्रालय के पास कोई भी पर्यटन नीति नहीं है जो हिमालय से जुड़े राज्यों को एक समग्र मास्टर-प्लान के अन्तर्गत जोड़े। सेमीनार की शुरुआत इस टिप्पणी के साथ हुई कि पिछली मीटिंग की जो भी सिफारिशें थी उनमें से किसी एक पर भी कार्यवाही नहीं हुई। दूसरी खास बात इस सेमीनार की यह रही कि इसमें इन राज्यों की स्थानीय संस्थाओं को जोड़ने की कोई कोशिश नज़र नहीं आई। सेमीनार में ऐसा लग रहा था कि यह सब पूर्व नियोजित सा हो रहा है जिस की मेज़वानी का भार भी हिमाचल पर्यटन विभाग की ओर से दो होटल इंस्पेक्टरों पर छोड़ा हुआ था व दूसरे हिमालयी राज्यों का प्रतिनिधित्व उनके नौकरशाह ही कर रहे थे। अब तक हिमटेब की आठ मीटिंगें हो चुकी हैं और पर्यटन का यह हाल है कि हिमालय की ऊंचाईयां आज कचरे का ढेर बन कर रह गई हैं और उसके निवासी इस विध्वंस के मूक दर्शक! इस आयोजन पर दस लाख के अनुमानित खर्चे के बाद क्या निकलेगा इस का पूर्वाभास पयर्टन व नागरिक उड्डयन मंत्री भारत सरकार व मुख्यमंत्री हि० प्र० की टिप्पणियों से भली-भांति हो सकता है। जहां तक कुल्लू, मनाली, लाहुल-स्पिति और लेह सर्कट की बात है सरकार को एक पुख्ता नीति बनानी होगी जो सख्ती से लागू हो। हिमाचल सरकार को चाहिए कि ऐसी पॉलिसी बनाएं जो इलाके के विकास को देखते हुए पर्यावरण दोस्त नीति के अन्तर्गत एक समान पग सब पर सख्ती से लागू करे। यही उसकी सफलता की राह होगी।

एक फूल

पीली सी चांदनी में
धुंए की कड़ियां फैलती चली जाएगी,
चेहरे को आइने में मत उकेरो,
क्षितिज को छूकर
विक्षिप्त चेहरों को पौंछ लो।
हवाओं का दामन थामकर,
यादों को पुकार लो।
ज़िन्दगी के पन्ने पर सीमा रेखांए खींचकर
ख्वाबों की खेती सींचते जाओ,
तब सुबह से शाम तक की दूरी सिमट आएगी,
चंद बिखरती टूटती सांसों में।
पलकें बिछती नहीं कभी, तो समेटो मत,
तोड़ो भी मत उसे,
बिखरी पांखरी लिए नीरव रजनी में
हवाओं के संग टूट कर बिखर जाने दो उसे।
शाख से बिछड़ा फूल है वह, मत रोको-
अश्कों में मुस्कराने दो उसे।।

❑रंजीत सिंह 'शाशनी'

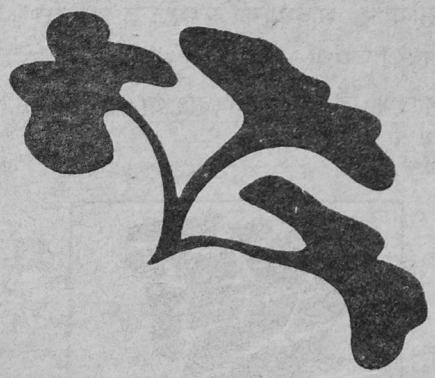

"मैं और मेरी ज़िन्दगी"

मै और मेरी जिन्दगी
सिक्के के दो पहलू कहूं
या अमावस की रात
या पूर्णमाशी की रात
कभी उमंगों से भरा
कभी निराशाओं में जकड़ा
एक वाण सिकन्दर
एक क्षण हारा हुआ दुर्योधन
पल-पल करवटें लेता जिन्दगी
कभी उस घौंसले की तरह
तिनका-तिनका चुनकर पक्षी दम्पत्ति ने था सजाया
कितने थे अरमान मन में
कितना बहार था समा में
फिर नन्हें चूज़ों का संसार में आना
मधुर क्षण था कितना
सभी खुशियां मानो सिमट आईं उस डाली पर
वक्त का फेर देखो
एक तूफानी शाम ने
बिखेर दिया तिनके-तिनके में
कौन कहता
यहां था कल एक सुन्दर आशियाना
वक्त की लुका-छिपी, धूप-छांव
मैं और मेरी ज़िन्दगी
यूं ही चलती रहेगी
सुख-दुःख, आशा-निराशा के रेल-गेल में
जब तलक न तोड़े दम यह ज़िन्दगी।

❑ डॉ० रंजीत वेद

एक फेयरवैल ऐसा भी

वर्ष 1994 में एक महत्वपूर्ण घटना घटी जिसमें लाहुल आलू सोसाईटी में हड़ताल होना और कर्मचारियों की मांगें लेकर सड़क पर आ जाना। उनकी मांगों में एक प्रबन्ध निदेशक भगवान सिंह का इस्तीफा भी था। तो जनाब वह इस मांग को पूरा तो नहीं कर पाए लेकिन भगवान सिंह ने खुद ही इस्तीफा देकर दुल्लती मारने की कोशिश की और उस पर तुर्रा कि प्रबन्ध मण्डल ने उनके लिए एक विदाई समारोह आयोजित किया जिसमें वर्तमान व भूतपूर्व निदेशकों और प्रबन्ध निदेशकों को दोपहर के भोजन पर बुलाया गया लेकिन शाम के चार बज गए मगर प्रबन्ध मण्डल तो मीटिंग में व्यस्त था। इसी बीच काफी मेहमान चले गए रह गए तो भगवान सिंह और उनका एक व्यापारी दोस्त। शाम को लगभग 5 बजे बिदाई समारोह का आयोजन हुआ और सब तरफ से तारीफों के पुल बंधे अपने लिए और हां दूसरों के लिए भी। लेकिन असली बात हम यह कहना चाहते हैं कि आलू सोसाइटी में ही भला क्यों वर्षो मेहनत करने के बाद समय आने पर किसी को उसको वाज़िव ईज्जत न देकर, जो उसका अधिकार है, साईड लाईन कर दिया जाता है ये बात आज तक हमारी समझ में नही आई।

कुर्सी की दौड़

लाहुल आलू सोसाईटी के लिए वर्ष 1994 बहुत ही रहस्यमय, आपातकालीन स्थिति व इस्तीफों की लुका छिपी वाला वर्ष रहा। इस वर्ष में रिकार्ड इस्तीफे दिए गए, रोके गए। लेकिन इस बीच लाहुल आलू सोसाईटी के कार्य कलाप कहां रह गए पता नहीं चला। इसके कई सैल घाटे की मार से पस्त हैं तो इसके कर्मचारी महंगाई की मार से झुके हुए। लेकिन वर्ष 1994 में घाटे सामने आए और कर्मचारी उठे, मगर कुर्सी की दौड़ लगी रही। जनसामान्य का कहना है कि लाहुल आलू सोसाईटी अब रिटायर्ड लोगों की आरामगाह बन गई है। यह बात तो इसके गवरन्मैंट से रिटायरमैंन्ट लेकर आए भूतपूर्व व वर्तमान डाईरेक्टर ही जानें लेकिन जहां तक हम समझते हैं यह जगह तो कांटों की सेज है, इन के पास तो सिर्फ यहां एक सुविधा है कि इसे महसूस करें या न करें।

जनजातीय उत्सव 1994

अब तक के सभी पन्द्रह अगस्त के जलसों को, अगर कहां जाए कि अंक दिए जाएं तो इस जनजातीय उत्सव को बीस प्रतिशत से ऊपर नहीं मिलना चाहिए। यानि कि फिसड्डी रहा यह आज तक के उत्सवों में। पिछले कई उत्सवों से यह देखने में आ रहा है कि फ़िजूल खर्ची व एकरुपता का इसमें ज्यादा प्रभाव है। रंगीन पोस्टर व खर्चीले स्मारिका का प्रकाशन अति आवश्यक पाया जा रहा है। यह सब अच्छा है अगर ये चीज़े अपना खर्चा स्वयं वहन करती हों। लेकिन प्रबुद्ध प्रशासन द्वारा जन सामान्य को निम्न स्तर का प्रायोजन परोसा जाए, यह कहां तक सभ्य है? इस साल तो हद हो गई; हमारे प्रबुद्ध ज़िला प्रशासन ने अपनी सहूलियत के लिए इस उत्सव को एक दिन आगे सरका दिया फलस्वरुप जनसामान्य परेशान और हताश 16 अगस्त (जिस दिन स्थानीय अवकाश घोषित था) को अपना सा मुंह लेकर रह गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों का यह हाल कि इन का स्तर किसी मिडल स्कूल के वार्षिक सांस्कृतिक संध्या से कम ही था। यदि जन जातीय उत्सव की संज्ञा दी गई है तो इसे जनजातीय संस्कृति और जनसाधारण के मनोरंजन और मिलन का उत्सव बनाया जाए। ज़िला प्रशासन भविष्य में लाहुल-स्पीति के साहित्य, संस्कृति व सृजन में दखल देने की अपेक्षा इस ज़िले के आर्थिक विकास पर अपना ध्यान केंद्रिन्त करे तो वह ज्यादा वाजिव रहेगा।

होप्स, होप, हप।

चन्द्रताल प्रवेशांक में छपे व्यग्यं कहां खो गए सब फूल में हाप्स के बारे में एक वाक्य ऐसा भी था कि अगर इसकी एन्ट्री इतनी धमाकेदार है तो इसका एण्ड क्या होगा तो दूसरी तरफ इसे लेटेस्ट क्रेज़ व बेरोजगार युवा दिलों की धड़कन भी कहा गया। तो जनाव आपने इसकी एन्ट्री तो देखही ली।जहां होप्स से होप यानि उम्मीदें लेकर आम उत्पादक अपनी कुल उत्पाद क्विंटल X 36.50 रुपए के आंकड़ों में व्यस्त था अब इसकी मार से इतना थक गया कि अब हफ यानि ऊफ! ही इसके साथ रह गया है। दूसरी तरफ बेरोज़गार युवक इस ताक में थे कि अगर यह फूल चल पड़े तो घर की राह लेंगे तो वह भी इस लेटेस्ट क्रेज़ की हालत से पस्त हैं। अब तो हालत यह है कि हर कोई झल्लाया ही नज़र आ रहा है। आम किसान को यह समझ नहीं आ रहा है कि वह लगे हुए फसल को उखाड़ फैंके या इसे लगाए रखे। होप सोसाईटी भी देख रही है कि किस तरह इसे होप्स होप हप और होप्स यानि भविष्य की उम्मीद बनाए रखे। फिलहाल सभी इसकी एन्ट्री के धमाके के कारण, जो इतना ज़ोरदार था, पस्त हालत में हैं।

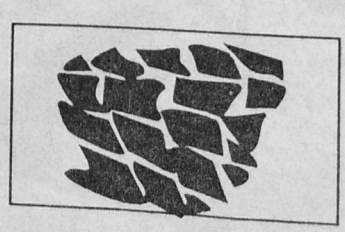

लाहुल आलू सोसाईटी अन्तर्विरोध या पतन

जून महीने के पूर्वाध में हुए हड़ताल से लाहुल आलू सोसाईटी में एक ऐसी गतिविधि देखने को मिली जो आज तक अंधेरे के गत में दबी पड़ी थी। इस का एक कारण तो यह रहा कि आज तक जो भी प्रश्नात्मक स्वर आलू सोसाईटी पर उठाया गया उस का जबाव बड़ी सावधानी से तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया या फिर यह हो सकता है कि आलू उत्पादक सदस्यों में इतनी लियाकत ही नहीं कि वह चीज़ों की तह तक पहुंच सकें। लाहुल आलू सोसाइटी का नाम कुल्लू व लाहुल में ही नहीं अपितु पूरे हिमाचल प्रदेश में आदर के साथ लिया जाता है। अभी तीन साल पहले सन् 1991में यह अपने अस्तित्व के 25 वर्ष पूरे कर चुकी है। यह भी अजीव इत्तफ़ाक है कि हर चौदहवें साल में इस सोसाईटी में चिंताजनक उथल-पुथल की स्थिति पैदा हुई है। पहला सन् 1980 में और दूसरा सन् 1994 में। सन् 1980 की स्थिति से तो आलू सोसाईटी उबर गई थी। मगर सन् 1994 के घटनाक्रम से कुछ नए सवाल उभरे हैं। उन में सब से बुनियादी सवाल यह है कि क्या इस संस्था की जड़ों में घुन लग चुका है? क्या 25 सितम्बर को आपातकालीन जनसभा बुलाना यह मान लेना है कि आलू सोसाईटी की वित्तीय स्थिति न केवल चिंताजनक है बल्कि ढह चुकी है। सोसाईटी की बैलेंस शीट तो यही बताती है। इस जनसभा में वर्तमान प्रबन्धक मंडल ने गत वर्ष के प्रबन्धक मण्डल पर इस के लिए ज़िम्मेवार होने का आरोप लगाया है जब कि वर्तमान प्रबन्धक मण्डल के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष पिछले मण्डल में रह चुके हैं। मनाली में सर्दियों में बुलाई गई आपात जनसभा ने भी यह फैसला सुनाया था कि कर्मचारियों को 79% डी०ए० देना सोसाईटी की आमदनी को देखते हुए नामुमकिन है और निकाले गए कर्मचारी बहाल किए जाऐंगे मगर ब्रेक देने के बाद। लेकिन असली मुद्दा तो कुछ और ही था। यह तो सभी जानते है कि कर्मचारी वर्ग और प्रबन्धक मण्डल के बीच में अन्तर्विरोध तब शुरु हुआ जब वेतन कमीशन का गठन हुआ। कर्मचारी वर्ग का मानना था कि वेतन-कमीशन अध्यक्ष के अड़ियल रुख के कारण यह तनाव बढ़ा, कई निदेशकों का भी यही मानना है। लेकिन अगर इस सब की तह तक जाएं तो असली मुद्दा सामने आएगा। यह मुद्दा है क्या आलू सोसाईटी सिर्फ आलू का विपणन करे या फिर वह अपने कार्य कलापों को विविधता देता चला जाए। इन दोनों में तत्कालीन आलू सोसाईटी के प्रबन्धक मण्डल ने दूसरा रास्ता अपनाया। इस का ज्वलंत उदाहरण कारगा में जनसभा में बीमार खुम्ब इकाई को हस्तगत करने के लिए जनमत लेना और एक बार जनसभा को इस पर एतराज़ होने के बावजूद, दूसरी बार इसके लिए प्रयत्न करना और मन्तव्य में सफल होना इस बात को दर्शाता है कि सोसाईटी ने विविधता लाने का निश्चय कर लिया था। इस खरीद के बाद तो जैसे सारे रास्ते खुल गए हों और इस तरह इस सोसाईटी द्वारा फल व सब्जी परियोजना तथा होटल प्रोजेक्टस में पर्दापण किया गया। यहां तक तो सब ठीक रहा लेकिन मुश्किलें तब आनी शुरु हो गईं जब असल में इन परियोजनाओं पर अमल करने की बात आई। सोसाईटी की प्लानिंग, परियोजनाएं सब ठीक रहे मगर कार्यान्वयन में यह बहुत पिछड़ गई। इस का मुख्य कारण अव्यावसायिक प्रबन्ध कार्य प्रणाली रही है। मानव संसाधन पर न के बराबर ध्यान रहा। इस की पृष्टभूमि को देखें तो ये सारी बातें सामने आती है।

यदि सारी परिस्थितियों की जड़ में जाएं तो हम यह देखते हैं कि आलू सोसाईटी की वर्तमान स्थिति इस संस्था में इस लिए उभरी है कि प्रबन्धक मण्डल इस संस्था के वर्तमान फैलाव को झेल सकने की क्षमता पैदा नहीं कर सकी। आज जो अन्तर्विरोध विभिन्न रुपों में उभर रहा है इस सोसाईटी के पतन को नहीं दर्शाता बल्कि यह तो एक बढ़ रही संस्था के दाव व तनाव की अभिव्यक्ति है। यह विचार भूतपूर्व चेयरमैन कर्नल प्रेम चन्द के हैं।आज देखने की बात यह है कि वर्तमान प्रबन्धक मण्डल इस समस्या से जूझना चाहती है या फिर आरोप-प्रत्यारोप के दलदल में फंस कर दोष दूसरों के सिर पर मढ़ना चाहती है। जहां तक हम देख रहे हैं कि आलू सोसाईटी ने जिस तरफ भी अपना हाथ डाला है सफलता उस से कोसों दूर ही रही है। उदाहरण के लिए खुम्ब इकाई जो बीमार इकाई थी और पचास-साठ लाख रुपये लगाने के बाद भी 100% बीमार इकाई ही है। क्या कारण है कि यह अभी भी बीमार इकाई ही है? दूसरी, फल व सब्जी परियोजना, जिस का बजट अढ़ाई करोड़ है, में से एक करोड़ सोसाईटी पहले ही लगा चुकी है फिर भी यह परियोजना, अधर में ही लटकी है। क्या इसमें भी सोसाईटी को असफलता ही हाथ लगेगी? यदि आंकड़ों का आकलन करें तो यही संकेत मिलता है। जब इस संस्था के अन्दर दम ही नहीं है कि वह परियोजनाओं को सफलता पूर्वक चला पाए तो क्यों यह किसानों के सिर पर बैठ कर ऐसा कर रही है? क्यों कि बैलेंस शीट तो यही कह रही

है कि अभी भी यह संस्था आलू विपणन के बल पर ही टिकी हुई है (बाक्स में देखें) कारोबार में इतनी विविधता लाने के बाद भी एक सदस्य के शेयर की कीमत कितनी बढ़ी है? क्या आलू सोसाईटी अपने शेयर-धारकों को डिविडेंड देती है? अगर यह अपने सदस्यों को शेयर पर डिविडेंड नहीं देती है और इतने फैलाव को संभाल पाने में समर्थ नहीं है तो यह नई परियोजनाएं क्यों लेती है! अभी तक देखने में यह आया है कि आलू विपणन के इलावा सभी मोर्चों पर इस संस्था के छक्के छूटे हैं। अभी तक सरकारी शेयर व ऋण का एक भी किश्त भुगतान नहीं हुआ है। खुम्ब परियोजना शतप्रतिशत बीमार इकाई बन गई है। फल व सब्ज़ी परियोजना से भी कोई खास उम्मीद नहीं है जिसका उदाहरण सेब के विपणन में न के बराबर भागीदारी व मटर के विपणन में लगातार घाटे की वजह से इस मैदान से भाग जाना है। इसके अतिरिक्त एल०पी०एस० रिज़ोर्ट भवन निर्माण का कार्य जोरों पर है। यहां तक तो ठीक है लेकिन क्या इसे चलाना इस संस्था के बस की बात है यदि सहकार भवन के प्रबन्ध को देखा जाए तो! क्यों कि इस रिज़ोर्ट का प्रबन्ध व्यावसायिक दक्ष लोगों द्वारा होना है और इस स्तर के रिज़ोर्टस का प्रबन्ध और इसे लाभ पर चलाए रखना खाला जी का घर नहीं है।

जहां तक हम समझते हैं किसी भी संस्था द्वारा फैलाव उस की स्थिरता व तरक्की की निशानी होती है। परन्तु फैलाव के साथ संस्था को चाहिए कि इस फैलाव को समेटने और आगे चलाए रखने का सामर्थ्य अपने अन्दर लाए और यह तभी संभव है जब प्रबन्धक मण्डल इस चुनौती को कबूल कर पुराने ढर्रे से निकल कर विभिन्न प्रोजेक्टस की तह तक जाए और जहां भी खामियां नज़र आएं उन्हें खत्म कर इन्हें लाभ की स्थिति में लाएं। अन्ततः किसी भी प्रोजेक्ट को चलाने का अर्थ होता है लाभ अर्जित करना और इस लाभ को संस्था की बढ़ोतरी और सदस्यों को डिविडेंड या सेवा के रुप में आबंटन करना। उपार्युक्त परियाजनाओं को देख कर यही लगता है कि इन्हें नए तरीके व नई सोच के अन्तर्गत अमल में लाना होगा। हम यह भी जानते हैं कि सहकारी संस्थाओं में कई खामियां हैं जो परियोजना कार्यान्वयन के काम में आड़े आती हैं। उदाहरण के तौर पर इस में अध्यक्ष का पद व निदेशक गण अवैतनिक रुप से कार्य करते हैं जिससे वे अपना पूरा समय इस संस्था को नहीं दे सकते हैं साथ ही निदेशकों का चयन हड़बड़ी की हालत में होता है। जिससे उनका सदस्यों के साथ सही तालमेल नहीं बन पाता है और न ही आगे विकसित हो पाता है। इस चीज़ को दूर करने के लिए प्रतिनिधत्व व्यवस्था को अपनाया जाना चाहिए। जिसमें सौ सदस्यों के पीछे एक प्रतिनिधि होता है। इस तरह 2 हज़ार सदस्यों के पीछे 200 प्रतिनिधि होंगे। इन्हें सोसाईटी का वार्षिक रिपोर्ट आम सभा से दो महीना पहले किताब की शक्ल में मिल जाना चाहिए ताकि सभी मुद्दों पर खुलकर व गहराई से विचार विमर्श हो सके और सही मायने में सार्थक फैंसले लिए जा सकें तथा निदेशकों का भी समुचित चुनाव हो सके। इसके अतिरिक्त प्रबन्धक निदेशक और निदेशक गण को भी सहकारिता के साथ-साथ सरकारी व नीजी क्षेत्र के कार्य प्रणाली से अवगत रखने के लिए वर्हिदर्शन समय-समय पर मुहय्या कराते रहने की आवश्यकता है। कर्मचारियों को भी नई तकनीकों से अवगत कराना और उपयुक्त प्रशिक्षण प्रदान कराना बहुत आवश्यक है।

सरकारी शेयर होने से सबसीडी तो मिलती है मगर इससे सरकार के कार्यक्रमों व उद्देश्यों के अन्तर्गत काम करना पड़ता है जिससे इस प्रकार की संस्था को लाभ अर्जित करने में कठिनाईयां आती हैं। लेकिन अगर संस्था यह तय करती है कि उस ने फैलाव को जारी रखना है तो संस्था को अपने अन्दर एक नई सोच को लाना पड़ेगा और मानव संसाधन विकास पर ज़ोर देना पड़ेगा और कर्मचारियों को कुछ लाभ देने पड़ेंगे तथा नई तकनीक का प्रयोग व व्यावसायिक योग्यता वाले लोगों को संस्था में लेना पड़ेगा। तभी हम सोच सकते हैं कि आलू सोसाईटी अपने अन्दर इस फैलाव के महामारी को रोकने में सफल होगी और इसी में संस्था की सफलता भी छिपी है।

अभी भी आलू सोसाईटी का पूरा काम काज का खर्चा व मालगुज़ारी का खर्चा जो कुल खर्चा 21,24, 414= 86 का 90% है अभी भी आलू विपणन पर लगाए गए 4% कमीशन जो कुल 17,22,040=00 रुपये बनता है से चलता है।

यह खुम्ब इकाई क्या है?

रायसन में कुल्लू के कुछ प्रगतिशील बागवानों ने एक खुम्ब इकाई की नींव 'कुल्लू वैली एग्रो इन्डस्ट्रीज़' के नाम से डाली थी। जब इस इकाई ने कार्य करना आरम्भ किया तो यह एक बीमार इकाई साबित हुई। इसके शेयर धारकों ने इसे खरीदने के लिए आलू सोसाईटी को आमन्त्रित किया क्योंकि ये लोग चाहते थे कि यह इकाई हिमाचलियों के पास रहे और आलू सोसाईटी इसे खरीदने में सक्षम है। इसी संदर्भ में कारगा में एक हंगामा खेज़ जनरल मीटिंग हुई जिसमें सारी बहस इसे हस्तगत करने या न करने पर टिकी थी। सारे हंगामे में कुछ खास बात सामने नहीं आई लेकिन इसी बावत एक खास जनसभा फिर कारगा में बुलाई गई जिस में सर्व सम्मति से इस की खरीद को अनुमति दे दी गई। तब

से आज तक यह इकाई किसी न किसी कारणवश बीमार चल रही है। अगर हम आंकड़ों को देखें तो पता चलेगा कि हालात क्या हैं? वैसे वर्तमान चेयरमैन का मानना है कि दो तीन सालों में इकाई लाभ अर्जित करना आरम्भ कर देगी। लेकिन भूतपूर्व चेयर मैन का मानना है कि यह एक बीमार इकाई है और 40% और पैसा डाल कर ही इसे चलने की हालात पर लाया जा सकता है। फिलहाल, आंकड़ों के आधार पर यह रोग ग्रस्त ही नहीं है बल्कि इसकी बीमारी दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है।

31 मार्च 1994 तक इस का घाटा 017,47,691-36 रुपये है तथा डिब्बा बन्द इकाई का घाटा अलग से 14,53,636-20 रुपये है। आलू सोसाईटी से लगभग 55,51,721-98 रुपये अब तक खुम्ब इकाई में लग चुका है। वर्तमान अध्यक्ष के अनुसार 30 लाख में सीधा खरीद लिया था। इसके बाद काफी पैसा लगा जिसका व्यौरा नहीं है। और इस तरह इस पर 87,53049-54 रुपये का दायित्व है और इसके ऊपर इस राशि का वार्षिक ब्याज को देखें तो आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि क्या होने वाला है। इसके इलावा विधायन और विपणन भी तो एक महत्वपूर्ण पहलू है जिसे हम किसी भी तरह अनदेखा नहीं कर सकते हैं। वैसे तो इकाई का बुनियादी ढांचा ही तकनीकी तौर पर गलत है लेकिन इसे बदलने की बजाए इस पर ही और ढांचा खड़ा कर दिया गया है। पूरी तरह वातानुकूलित नहीं होने के कारण उत्पादन पर कोई नियत्रंण नहीं रहेगा। खुम्ब इकाई और डिब्बा बन्द इकाई का वार्षिक घाटा बैलेंस शीट के अनुसार इस वक्त क्रमश: 36,867-27 रुपये तथा1,22,323-27 रुपये (कुल1,58,190-54) है। और दैनिक उत्पादन का विपणन जोकि 70 से 80 कि० ग्रा० के लगभग है बड़ी मुश्किल से हो पाता है। जब तक आपका गुणवत्ता व उत्पादन पर नियंत्रण नहीं होगा आप की विपणन क्षमता कमज़ोर ही रहेगी। आज मुद्दा सदस्यों का यह है कि इसे करोड़ों की सम्पत्ति समझकर आलू सोसाईटी के केश क्रेडिट लिमिट और इसकी जमा पूंजी इसमें लगाते रहें या फिर इसे बीमार घोषित कर इस से छुटकारा पा लें! इसपर गहराई से गौर करना आलू सोसाईटी के भविष्य के लिए नि:सन्देह ही आवश्यक है। क्योंकि 55,51,721 रुपये पर 18% की दर से ब्याज लगाएं तो सालाना इस पर 11,67,190 रुपये बनता है और खुम्ब इकाई और डिब्बा बन्द इकाई का उत्पादन आज की दर से लाभ उर्पाजन करता रहे तो इसे पूरा करने के लिए आधी शताब्दी लगेगी। बेहतर है कि इस सफेद हाथी से छुटकारा पा लिया जाए।

फल व सब्जी परियोजना

इस परियोजना का भी महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें भी ऋण भुगतान की किश्त बन्दी हुई पड़ी है। लेकिन अभी तक कुछ भी वापिस नहीं गया है। इस परियोजना में भी सोसाईटी पर सरकार के प्रति लगभग एक करोड़ का दायित्व रहेगा। क्या इस मुद्दे को भी खुम्ब युनिट की तरह बसह में लाना पड़ेगा ताकि समय रहते बीमारी को पकड़ कर जड़ से खत्म कर सकें।

आलू सोसाईटी अपना हिसाब कैसे रखता है?

किसी भी संस्था की रीढ़ की हड्डी उसका लेखा अनुभाग होता है और इस मुद्दे पर भी लाहुल ओलू सोसाईटी फिस्सड्डी रही है। सन् 1980 के वित्तीय घोटाले को झेलने के बाद भी इसके कानों पर जूँ तक न रेंगी। आज भी देखा जाए तो खुम्ब युनिट में 19 लाख का खर्चा सन्देहास्पद लगता है। कारण अपर्याप्त लेखा अनुभाग स्टाफ व सशक्त वित्तीय प्रणाली का अभाव है। जहां तक अब तक इस विभाग का जो प्रदर्शन रहा है वह ईमानदार प्रबन्धक मण्डल व कर्मचारियों की लगन के कारण ठीक सा रहा है लेकिन यह किसी भी तरह एक सशक्त और सुदृढ़ लेखा अनुभाग का स्थान नहीं ले सकती। आज तक जो भी कार्य शैली रही है वह अब तक तो ठीक रही है लेकिन आलू सोसाईटी के वर्तमान फैलाव को देख इस अनुभाग को भी अलग-२ अनुभागों में बांटना पड़ेगा। आज हालत यह है कि कन्जूमर सैल का कैश क्रेडिट लिमिट एल०पी०एस० रिज़ोर्ट में लग रहा है तो ट्रेडिंग का पैसा कहीं और। इसी प्रकार फल व सब्ज़ी परियोजना का पैसा भी दूसरे सैल में मिल गया है। इसमें घपले की बू तो नहीं आती है लेकिन इस तरह हिसाब-किताब आपस में मिलने से किसी भी सैल के प्रदर्शन व लाभ या हानि उपार्जन का पता नहीं चलता है। वैसे भी इस तरह का अभ्यास व्यापार नीति के खिलाफ है। जैसे हमने पाया कि कन्ज़यूमर सैल का बैलेंस शीट बनने से पहले यह सैल अढ़ाई लाख घाटे में था लेकिन बैलेंस शीट में लाभ अर्जित कर रहा है तो पता लगा कि कारण वही रहा है। इसका कैश क्रेडिट लिमिट मार्केटिंग में लगाया गया। इस तरह उस पर ब्याज डालें तो यह घाटे में है। हम यह भी समझते हैं कि अब तक तो जो चल रहा था वह पीछे से ही चल रहा था लेकिन आज आलू सोसाईटी के बढ़ते हुए कार्यकलाप देखें तो इस अनुभाग में तबदीली लाना अति आवश्यक है। किसी भी संस्था में फैलाव उसके उन्नति की निशानी होती है लेकिन उस फैलाव को संभालना सिर्फ एक सधे हुए लेखा अनुभाग व पूर्ण व्यावसायिक अफसरों के ही वश की बात है अन्यथा खुम्ब युनिट व फल व सब्ज़ी परियोजना ऋण भुगतान को जिस तेज़ी से विशालकाय बनाती जा रही है यह सोसाईटी को किसी भी दिन ले डूब

सकती है। काफी जानकारी लेने पर हमने यह पाया कि जब तक आलू सोसाईटी का लेखा अनुभाग एक वित्त नियन्त्रक जो वित्तीय मामलों और बजट बनाने में माहिर हो, के अन्तर्गत न लाया जाए, मौजूदा बीमारी से निजात पाना नामुमकिन है। यह पद इश्तहार द्वारा और अच्छा वेतन व सुविधा से परिपूर्ण होना चाहिए। इस वित्त नियन्त्रक के तहत एक एकाउंट आफिसर हो जो व्यय के हिसाब में माहिर हो और विभिन्न सैलों के एकाउटेन्टस उसके प्रति उत्तरदायी हों। इस तरह से आज जो लेखा अनुभाग में खिचड़ी पकी हुई है वह तरतीबबार हो जाएगी और साथ में वित्त के मामले में प्रबन्ध मण्डल पूरी रोशनी में रहेगा और वह सोसाईटी की कार्यकुशलता का सही आकलन कर सकेंगे।

क्या लाहुल आलू सोसाईटी का अस्तित्व खतरे में है?

एक अवलोकन

लाहुल आलू सोसाईटी में केन्द्रीय व राज्य सरकार का शेयर:

सरकार का शेयर	
अब तक जो मिला	1,09,36,000-00
फल व सब्ज़ी परियोजना	
को मिला	48,60,000-00
कुल योग	1,57,96,000-00
सोसाईटी का अपना	
शेयर	21,82,700-00

इस प्रकार सरकार और आलू सोसाईटी की प्रतिशत शेयर में हिस्सेदारी **93%** और **7%** है। इसके अलावा आलू सोसाईटी की देय ऋण भुगतान स्थिति अब तक **73,00,000-00** है और बुरे व वापिस न होने वाले कर्ज बैलेंस शीट के मुताबिक **24,35,571-52** है। देय ऋण का अभी एक भी किश्त नहीं दिया गया है। जब हमने वर्तमान चेयरमैन से पूछा कि एल०पी०एस० पर एक संस्था के रुप में जो कर्ज़ा चढ़ा है कैसे दूर किया जा सकता है? क्या यह असहनीय है तो उनका कहना था इसके ऊपर कोई कर्जा नहीं है। अगर कर्ज़ा है तो सिर्फ सरकार का शेयर है। जो कि हर संस्था को लेना पड़ता है। लेकिन उन्होंने सोफ्ट लोन, ऋण और परियोजनाओं के ऋण कम्पोनेंट की बात नहीं की है लेकिन बैलेंस शीट तो झूठ नहीं है।

सोसाईटी के कार्यकलापों में सरकार कैसे हिस्सेदारी करती है।

(1) अपना शेयर लगा कर

(2) ऋण देकर

(3) ऋण पर सबसीडी देकर

(4) पूर्ण सबसीडी देकर

लेकिन भुगतान न होने की स्थिति में सरकार निम्नलिखित तरीके से इसके अस्तित्व को खतरा पैदा कर सकती है।

(1) सरकार किसी भी समय इसे हस्तगत कर सकती है।

(2) सरकार सोसाईटी को कभी भी भंग कर सकती है।

(3) सरकार ऋण अदायगी में सफल न होने पर देय ऋण भुगतान पर पैनल ब्याज लगा सकती है।

(4) आखिर में अगर सोसाईटी ऋण अदायगी में असफल होती है तो सरकार देय ऋण को सोसाईटी के सम्पत्ति को बेचकर/नीलामी द्वारा या (Liquidate) करके वसूल करेगी।

यह सब कैसे हुआ?

अगर खुम्ब युनिट में आलू सोसाईटी के बहुमूल्य 55 लाख रुपये निवेश नहीं हुए होते तो शायद यह वित्तीय संकट न पैदा होता। लेकिन वर्तमान अध्यक्ष का कहना है कि इसमें वह लगातार सुधार ला रहे हैं और खुम्ब युनिट दो साल बाद लाभ अर्जित करना शुरु कर देगी लेकिन लाभ उर्पाजन सिर्फ उस युनिट का नहीं माना जाएगा बल्कि जो 55 लाख रुपये निवेश हुए उस पर अठारह प्रतिशत ब्याज के हिसाब से जो सालाना सोसाईटी पर भार बढ़ रहा है उसे भी तो उतरना होगा तभी उसे लाभ अर्जित करने वाला युनिट कह सकते हैं अन्यथा यह सफेद हाथी साबित होगी। दूसरी बात जो सामने आई है वह यह है कि इसे करोड़ों की जायदाद समझा जा रहा है लेकिन असलियत तो यह है कि यह अभी भी सोसाईटी के नाम पर नहीं है। बल्कि इसका शेयर आलू सोसाईटी के निदेशकों को लेना पड़ता है। और इसके लीज़ की अवधि जो तीस साल तक ही है, उसे बढ़ाने के लिए स्थानीय लोग आनाकानी कर रहे हैं। यह सब देखते हुए यह समझा जा रहा है कि जब तक इस पर पूरा गौर न हो यह भविष्य में आलू सोसाईटी के पतन का कारण बन सकती है इसकी बू अभी से सन्देहास्पद रुप से खर्च किए गए 24 लाख रुपये से आता है जिसमें 19 लाख रुपये सरकारी सबसीडी है और 5 लाख रुपये सोसाईटी का अपना लगा है। आज खुम्ब युनिट को रखें या न रखें यह बहस का मुद्दा होना चाहिए।

तत्कालीन चेयरमैन एल.पी.एस. कर्नल प्रेम से चन्द्रताल की भेंट वार्ता

1. च० : पीछे एल.पी.एस. में जो विवाद खड़ा हुआ उसकी क्या भूमिका थी?

   चे० : एल.पी.एस. में विगत में भी ऐसा मौका हर दस बारह साल में आता रहा है। यह एक बढ़ती हुई संस्था के दाव और तनाव की मिली जुली अभिव्यक्ति है। दुर्भाग्यवश इस बार हम बाज़ार व गलियों में उतर गए।

2. च० : कर्मचारियों की मांगें क्या थी? क्या वे अब मान ली गई हैं?

   चे० : 1. दिहाड़ीदारों की नौकरी में ब्रेक न हो।

   : 2. दो वर्ष बाद कर्मचारियों को नियमित किया जाए।

   : 3. 79% डी.ए. दिया जाए।

   : 4. सरकारी कर्मचारियों के समान तनख्वाह व भत्ते दिए जाएं।

   : 5. (और बाद में एम.डी., एल.पी. एस. का त्याग पत्र।)

3. च० : यूनियन और प्रबन्धकों के बीच जो समझौता हुआ उसकी शर्तें क्या है? क्या वे प्रबन्धकों की आकांक्षाओं के अनुरुप है?

   चे० : समझौतें की शर्तें :-

   : 1. हड़ताल एकदम वापिस।

   : 2. काम नहीं तो वेतननहीं।

   : 3. कर्मचारी संघ किसी भी राजनैतिक दलों द्वारा समर्थित संगठन से सम्बन्ध नहीं रखेगा।

   : 4. तीन कर्मचारियों की बहाली।

   : 5. भविष्य में कर्मचारियों के वेतन को अर्जित लाभ के साथ जोड़ा जाएगा।

   : 6. भविष्य में हड़ताल नहीं होगी। सभी विवाद निदेशक मण्डल व विभाग के साथ बातचीत के द्वारा तय किए जाएंगे।

   : 7. सभी मामले व शिकायतें दोनों पक्ष वापिस लेंगे।

   : 8. त्रैमासिक वैलफेयर मीटिंग हुआ करेगी।

4. च० : इस विवाद में आप की क्या भूमिका रही?

   चे० : मुझे इस तरह की चीज़ की उम्मीद नहीं थी। जैसे ही मुझे हड़ताल की पृष्टभूमि का भान हुआ, मैंने एल.पी.एस. के स्थायित्व और भलाई को सुनिश्चित करने के लिए उचित पग उठाए।

5. च० : यह विवाद सोलह दिनों तक चला, इतना लम्बा क्यों खिंच गया? निदेशक मण्डल की निष्कृयता के कारण यह हुआ है या कर्मचारी संघ के अड़ियल रुख के कारण?

चे० : निदेशक मण्डल इस दौरान अत्यंत सक्रिय रहा। प्रतिदिन स्थिति की समीक्षा की गई और कार्यवाही की गई। हमारी प्रतिक्रियाएं त्वरित व मांकूल थीं।

6. च० : आने वाले समय में ऐसे अप्रिय प्रसंग न उठें, इस बारे में आप का चेयरमैन, एल.पी.एस. की हैसियत से क्या सोच है?

चे० : निदेशक मण्डल के सदस्यों का चुनाव विधिपूर्वक हो।

: 2. प्रबन्ध व्यवस्था को और अधिक प्रभावी बनाना होगा।

: 3. कर्मचारी वर्ग तथा सदस्यों के बीच सम्पर्क अभाव बिल्कुल न रहे।

: 4. कुछेक अधूरी जानकारी रखने वाले लाहुलियों को अपने दुराग्रह पूर्ण भड़काऊ वक्तव्यों से गुरेज़ करना चाहिए।

7. च० : एल.पी.एस. के लगभग सभी सेल, सुना जा रहा है कि घाटे में चल रही हैं। यदि हां, तो इसके क्या कारण है? और आप ने अपने इस संक्षिप्त कार्यकाल में इसे सुधारने के लिए कौन से कदम उठाए?

चे० : यह सच नहीं है। हां, यहां यह बहुत ज़रुरी है कि एल०पी० एस० के हर पहलू के तह तक जाया जाए।

8. च० : इस घाटे के व्यापार के लिए अव्यवसायिक आचरण कितने उत्तरदायी हैं और कर्मचारियों की अक्षमता कितनी ज़िम्मेवार?

चे० : मैं समझता हूं आज एल.पी.एस. आगे दौड़ पीछे छोड़ की स्थिति में हैं। कर्मचारियों ने काम किया है पर उन की अपनी सीमाएं हैं। मानव संसाधन विकास एल.पी.एस. की एक कमज़ोरी रही है।

9. च० : इस हड़ताल के कारण प्रबन्धकों और कर्मचारी वर्ग के बीच जो अन्तर्विरोध पैदा हो गया है, जिसमें आप का त्याग पत्र देने का विचार भी शामिल है, क्या यह अन्तर्विरोध एल.पी.एस. को पतन की ओर ले जाएगा?

चे० : एल.पी.एस. को बड़े शल्य चिकत्सा की आवश्यकता है। इसे ताज़ी हवा की ज़रुरत है। मांत्र आलोचना (अधिकांश लाहुलियों, जिन में पढ़ा लिखा वर्ग भी शामिल है, का एक ओछा आचरण) से एल.पी.एस. की स्थिति नहीं सुधर सकती है।

10. च० : क्या आप समझते हैं कि एल.पी.एस. कर्मचारी यूनियन द्वारा भारतीय मज़दूर संघ का दामन पकड़ना एल.पी.एस. में अनावश्यक राजनीति की घुसपैठ है?

चे० : हां।

वर्तमान चेयरमैन, एल. पी. एस. श्री नोरबू बरोंगपा से चन्द्रताल की भेंटवार्ता के अंश

च० पीछे एल.पी.एस. में जो विवाद खड़ा हुआ उस की क्या पृष्टभूमि थी?

चे० कर्मचारियों के हड़ताल का मुख्य कारण 22-23 अनियमित कर्मचारियों को बिना किसी कारण के बर्खास्त करना था।

च० कर्मचारियों की मांगें क्या थी? क्या वे अब मान ली गई हैं?

चे० कर्मचारियों की मांगें जो 22-23 अनियमित कर्मचारी बर्खास्त कर दिये गये थे उन सबको बिना किसी शर्त बहाल कराने का और वेतन का था। सारे अनियमित कर्मचारी जो बर्खास्त किये गये थे सबको बहाल कर दिया गया है। और वेतन का फैसला अभी नहीं हुआ है।

च०. यूनियन और प्रबन्धकों के बीच जो समझौता हुआ उसकी शर्तें क्या है? क्या वे प्रबन्धकों की आंकाक्षाओं के अनुरुप है?

चे० यूनियन और प्रबन्धकों के बीच जब समझौता हुआ, मैंने उसमें बिल्कुल दखल नहीं दिया क्योंकि मैने 20 मई को अपना इस्तीफा प्रबन्धक मण्डल को दे दिया था। यूनियन और प्रबन्धकों में जो समझौता हुआ है उसकी फोटोस्टेट प्रतिलिपि इसके संलग्न है।

च० इस विवाद में आप की क्या भूमिका रही?

चे० इस विवाद में मेरी कोई भूमिका नहीं रही। क्योंकि मैंने 20 मई को निदेशक मण्डल से अपना इस्तीफा दे दिया था और दुबारा मैंने सोसाईटी के दफ्तर जाना मुनासिब नहीं समझा।

च० यह विवाद 16 दिनों तक चला यह इतना लम्बा क्यों खिंच गया? निदेशक मण्डल की निष्कृयता के कारण यह हुआ है या कर्मचारी संघ के अड़ियल रुख के कारण?

चे० यह विवाद जो 16 दिन तक चला मुझे बताया गया है कि कर्मचारी हर रोज़ दफ्तर जाते रहे और बातचीत के लिए प्रबन्धकों से कहत रहे। परन्तु प्रबन्धक बातचीत के लिए तैयार नहीं हुए। इससे साफ ज़ाहिर होत है कि प्रबन्धकों की निष्कृयता के कारण ही यह सब कुछ हुआ। और 16 दिन हड़ताल के बाद कर्मचारियों की जो भी मुख्य मांगें थीं वे मान ली गई हैं। जो कि शुरु में ही बातचीत से हो सकती थी। खोदा पहाड़ निकला चूहा वाली बात हुई। सोसाईटी का लाखों का नुकसान करवाया। इसका जिम्मेदार कौन है?

च० आने वाले समय में ऐसे अप्रिय प्रसंग न उठें, इस बारे में आप का चेयरमैन एल०पी० एस० की हैसियत से क्या सोच है?

चे० मेरे अपने कार्यकाल में न कभी ऐसी बातें हुई न आगे जब तक मैं इस संस्था का मुख्य हूं, ऐसी घटनाएं होने दूंगा। और जिस दिन से मैंने, यानि 16 अगस्त से इस संस्था का कार्यभार संभाला है, मैंने कर्मचरियों से मीटिंग की हैं और उन्होंने मुझे पूर्ण आश्वासन दिया है कि जैसा पहले मुझ से सहयोग करते थे वैसा ही सहयोग देंगे।

च० एल.पी.एस. के लगभग सभी सैल सुना जा रहा है कि घाटे में चल रही हैं। यदि हां तो इसके क्या कारण है?

चे० एल.पी.एस. का कोई भी सेल घाटे में नहीं जा रहा हैं। यह आपने गलत सुना है। सिर्फ ट्रांसपार्ट और गेस्टहाऊस का थोड़ा मुनाफा कम होता है।

च० इस घाटे के व्यापार के लिए अव्यवसायिक आचरण कितने उत्तरदायी हैं और कर्मचारियों की अक्षमता कितनी ज़िम्मेदार है?

चे० देखिए जब मैं एल.पी.एस. में पहली बार चेयरमैन बन कर 1980 में आया, सोसाईटी के पास अपना दफ्तर तो छोड़ो खोखा भी नहीं था, किराए के मकान में दफ्तर था। सम्पत्ति के नाम पर सिर्फ दो ट्रक 561 और 564 जो एन.सी.डी.सी. की सहायता द्वारा लिए गए थे। मैंने अपने समय में ही इन्हीं अप्रशिक्षित स्टाफ के बलबूते पर और मेम्बर बोर्ड वालों के सहयोग से एल.पी.एस. का करोड़ों का जायदाद बनाया। और सोसाईटी को सी क्लास से ए क्लास सोसाईटी बनाया और एल.पी.एस. का नाम सारे हिन्दुस्तान और एशिया में ऊंचा किया।

च० इस हड़ताल के कारण प्रबन्धकों और कर्मचारी वर्ग के बीच जो अन्तर्विरोध पैदा हो गया है, क्या यह अन्तर्विरोध एल० पी० एस० को पतन की ओर ले जाएगा?

चे० इस हड़ताल में कर्मचारियों और प्रबन्धकों में अन्तर्विरोध पैदा करने में कुछ सोसाईटी विरोधी तत्वों का काफी हाथ था। जिसको कि प्रबन्ध समझ नहीं सकी। आज भी वे उसी प्रकार सक्रिय हैं और समय-समय पर कुछ न कुछ शोशा छोड़ते रहते हैं ताकि सोसाईटी फेल हो जाए और अपना मतलब पूरा हो। जहां तक मेरे त्याग पत्र का सम्बन्ध है। वह मैं काफी समय से देख रहा था, कुछ फैसले सोसाईटी के हित में नहीं हो रहे थे। जिसके लिए कई बार मैंने बोर्ड से आपत्ति की और चेयरमैन को भी कई बार आगाह किया कि ये फैसले सोसाईटी के हित में नहीं है। परन्तु चेयरमैन का एक ही जबाव होता था कि यह बोर्ड का फैसला है मैं कुछ नहीं कर सकता। इसलिए मैंने सोचा कि मैं क्यों बदनाम हो रहा हूं इससे तो बेहतर है

त्यागपत्र दे दिया जाए और मज़बूर होकर 20 मई को मैंने अपना इस्तीफा दे दिया था।

अन्तर्विरोध तब पैदा होता है जब अनुभवहीन और गलत प्रबन्ध आता है। जिनको सहकारी सोसाईटी के उद्देश्य का पता नहीं होता है। मैंने अपने कार्य काल में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

च० क्या आप समझते हैं कि एल०पी० एस० कर्मचारी यूनियन द्वारा भारतीय मज़दूर सभा का दामन पकड़ना एल०पी०एस० में अनावश्यक राजनीति की घुसपैठ है?

चे० वैसे हरएक को अपने हक के लिए लड़ने का अधिकार है। परन्तु किसी दलगत राजनीति द्वारा समर्थित संगठन का सहारा लेना दु:खद है। जब तक मैं इस संस्था में हूं कोशिश करुंगा कि इसे दलगत राजनीति से और स्वार्थी तत्वों से बचा कर रखूं।

च० एल०पी०एस० की छवि जो आज तक थी, वर्तमान अन्तर्विरोध की वजह से स्खलित तो नहीं हो रही?

चे० पीछे जो हड़ताल हुई थी उससे एल. पी.एस. की छवि को बहुत धक्का लगा है। इसमें दो राय नहीं है। हमने अपने समय में कुछ बड़े और छोटे प्रोजेक्ट हाथ में लिए थे। जैसे फल व सब्जी परियोजना जो 3 करोड़ 43 लाख का था। जिसमें शीत भण्डार बनाना भी शामिल था जिसके लिए भूमि हमने कुंडली सीमा में हरियाणा में लेकर रखा था, कुछ भी कार्यान्वित नहीं किया गया जिससे हमारी संस्था की छवि एन.सी.डी.सी. और विभाग की नज़रों में गिर गया। और भी परियोजनाओं को कार्यान्वित नहीं करने के कारण सोसाईटी की जबाव तलबी हो रही है। उसी दिन से हमने दुबारा से पुनर्विचार करना शुरु कर दिया है। और बोर्ड का मुझे पूरा सहयोग है। मैं आशा करता हूं कि हम सोसाईटी की खोई हुई छवि को दुबारा सजीव करने में कामयाब होंगे।

च० क्या प्रबन्ध निदेशक एल०पी० एस० के इस्तीफे से सोसाईटी के कारोबार में फर्क पड़ा है?

चे० एम.डी. के इस्तीफे से सोसाईटी के कारोबार को अभी तक तो कोई फर्क नहीं पड़ा है। जबकि आजकल हमारे पास एम. डी. नहीं है। विपणन प्रबन्धक काम की देखरेख कर रहा है। और कारोबार सही तरीके से चल रहा है।

च० क्या वर्तमान प्रबन्धक मण्डल मौजूदा स्थिति को देखते हुए इस साल के आलू की फसल का सही ढंग से विपणन कर पाएगी?

चे० मुझे सोसाइटी में काम करते हुए लगभग 14 साल हो गए हैं मुझे सोसाईटी के कार्य प्रणाली की एक-एक चीज़ का पता है। मेरे अपने इतने लम्बे तजुरबे के साथ मुझे ठीक बोर्ड मिला है और हम सब मिल कर बीज आलू का विपणन करने में पूरी तरह सक्षम है।

च० मशरुम प्रोजेक्ट को क्या आप बीमार यूनिट नहीं मानते?

चे० मशरुम परियोजना को हमने कुल्लू वैली एग्रो इंडस्ट्रीज़ से बीमार इकाई के तौर पर ज़रुर लिया था। असल में यह बीमार इकाई नहीं थी। प्रबन्धकों में आपसी मतभेद और तालमेल न होने की वजह से इकाई बीमार हो गई थी।

हमने जब इस इकाई को लेने की सोची तो बोर्ड ने 2-3 महीने इस इकाई का अध्ययन किया और पाया कि यह सही चलने योग्य हो सकता है। तब 30 लाख में सीधी खरीद की। जिसकी आज बाज़ार मूल्य करोड़ों में है। शुरु में इसका आधारभूत ढांचा बनाने में काफी पैसा लगा। पहले इसमें 7 कमरे ही खुम्ब उत्पादन के थे हमने बड़ा कर 14 कमरों का कर दिया। कुछ अतिरिक्त मशीनें भी खरीदी हैं। और लगातार इसमें सुधार ला रहे हैं। अभी दो साल से इकाई अपना खर्चा निकाल रही है। और अभी हम विधायन में जूस, जाम, सौस, आचार आदि बना रहे हैं। और जल्दी ही डिब्बाबन्द करने का काम भी शुरु करने जा रहे हैं। और हमें पूरी उम्मीद है कि दो-तीन साल में इकाई पूरी तरह चलने योग्य हो कर अच्छा लाभ देना शुरु करेगी।

च० क्या आप नहीं समझते कि जिस तरह एल०पी० एस० का फैलाव विभिन्न कामकाज में हो रहा है तो इसे चलाने के लिए मानव संसाधान विकास, ट्रेनिंग और व्यावसायीकरण की तरफ ध्यान देने की ज़रुरत है? अगर ऐसा है तो आप इस बारे में क्या कहना चाहते हैं?

चे० पहले सोसाईटी का काम सीमित था और अप्रशिक्षित स्टाफ से भी काम निकल जाता था। परन्तु अब कारोबार बहुत फैल गया है। और हमारे पास प्रशिक्षित और व्यावसायिक दक्ष स्टाफ नहीं है। अब हम महसूस कर रहे हैं कि इतने बड़े इदारे को चलाने के लिए व्यावसायिक और प्रशिक्षित स्टाफ की ज़रुरत है। आगे से जो भी हम स्टाफ भर्ती करेंगे उसमें प्रशिक्षित और व्यावसायिक लोगों को ही लेगें। और जो वर्तमान स्टाफ है उन्हें हम ऑफ सीज़न में आगे प्रशिक्षण के लिए भेजेंगे। सोसाईटी में टेलेक्स पहले ही लगा है। फैक्स लगा रहे हैं। और आगे कम्पयूटर भी लगाने का इरादा है।

च० एल०पी० एस० पर एक सस्था के रुप में जो कर्ज़ा चढ़ा है वह कैसे दूर किया जा सकता है? क्या यह असहनीय है?

चे० एल.पी.एस. के ऊपर किसी प्रकार का कोई कर्ज़ा नहीं है। अगर कर्ज़ा है तो सिर्फ सरकार का शेयर है। जो कि हर संस्था को लेना ही पड़ता है। इस समय सरकार का शेयर 1,09,36000-00 रुपये है। और अपना सोसाईटी के सदस्यों का व्यक्तिगत शेयर21,82,700-00 रुपये है। जिसको कि

अभी भी हम हर साल बढ़ा ही रहे हैं।

दूसरी तरफ सोसाईटी ने करोड़ों रु० के जायदाद बना लिए हैं। जितना सरकार का शेयर है उससे 3-4 गुना हमारे पास जायदाद व जमाधन है। इससे सोसाईटी को या सदस्यों को कोई दायित्व आने वाला नहीं है। यह उस सूरत में असहनीय हो सकता था जब सोसाईटी के पास अपनी जायदाद कुछ न हो, तब दायित्व मेम्बरों पर आ सकता था। इस समय सोसाईटी अपने पांव पर पूरी तरह खड़ी है।

जब तक मैं इस संस्था में हूं मेरा एक ही उद्देश्य है कि लाहौल आलू उत्पादक सहकारी संस्था को एक आदर्श संस्था बनाऊं। जिसका अपना शिक्षण संस्थान हो अपनी वित्तीय संस्था हो और बाकी के कारोबार तो हम पहले से कर ही रहे हैं। और सदस्यों को सब सुविधाएं हम पहले ही दे रहे हैं। आगे भी और सहूलियतें सदस्यों को मुहय्या करने की कोशिश ज़ारी रहेगी।

स्पिति क्षेत्र के संस्कृति की विवेचना

भारत अपनी संस्कृति के लिए विश्व में अद्वितीय है। यहां की संस्कृति अजूबों से भरी पड़ी हैं। इस देश के छोटे से राज्य हिमाचल प्रदेश के 12 ज़िलों में से एक ज़िला लाहौल-स्पीति है। भौगोलिक स्थिति एक जैसा होने के कारण लाहौल-स्पीति दो घाटियों को मिला कर एक ज़िले का रुप दिया गया है। यहां मेरा लक्ष्य स्पीति क्षेत्र के संस्कृति की विवेचना करना है।

स्पीति क्षेत्र 24,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। इस के पूर्वी भाग में चीन तथा उत्तर पश्चिम की ओर लद्दाख एंव हिमालय पर्वत है। 16 वीं शताब्दी से पहले बाहरी प्रभाव के कारण यहां की संस्कृति में विविधता थी, परन्तु वर्तमान समय में बौद्ध धर्म ने यहां मान्यता प्राप्त कर लिया है। लोगों में बौद्ध धर्म के प्रति विश्वास इतना कूट-कूट कर भरा पड़ा है कि इस के बिना यहां की संस्कृति की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

यहां के लोगों का जीवन स्तर बहुत साधारण है। लोगों के रहन-सहन, खान-पान में बाहरी तत्वों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पूरुष लम्बा 'खोए' (चोलू) पहनते हैं। पैरों में लम बूट जो याक के चमड़े का बनाया जाता है। तथा सिर पर छैरिंग क्यतगोव (टोपी) पहनतें हैं। औरतें भी लम्बी सुलमा (चोलू) और पैरों पर वहीं लम तथा सुलमा के ऊपर 'लिंगज़े' (जो केवल फूलों से भरी शॉल की तरह होता है, पीठ पर ओढ़ते हैं। ग्रीष्म ऋतु में हल्के तथा शरद ऋतु में ऊनी कपड़ों का प्रयोग करते हैं। खान-पान में 'छासा' (नमकीन चाय) के साथ सतू खाते हैं। इस के अतिरिक्त 'थुकपा' यहां का प्रिय भोजन है जो तिब्बती थुकपा से भिन्न है। 'ज़रा' यह जौ व काला मटर को भून कर मोटा पीसा जाता है और 'भुन्नालिक' जो आटे के सेवई की लम्बाई में होत है को नमक डाल कर उबालते हैं, उसे चीनी तथा शुद्ध घी के साथ लेते हैं। यह पकवान जब घर में अतिथि आए तो अवश्य बनाय जाता है।

इस क्षेत्र के पारिवारिक जीवन का अपना महत्व है। घर में सब से बड़ा लड़का या लड़की घर की सारी सम्पत्ति का अधिकारी बन जाता है। परिवार के एक सदस्य को लड़का हो तो लामा बना कर और लड़की हो तो चोमो बना कर बौद्ध गोम्पा में बेच देते हैं। ऐसी मान्यता है कि परिवार के लोगों को बौद्ध धर्म की शिक्षा देने के लिए यह अनिवार्य है। यहां अनेक बौद्ध गोम्पा (मन्दिर)है, जहां 50 से 100 तक लामा निवास करते हैं, जो रात दिन शुद्ध घी की ज्योति जलाकर 'ओ३म मणि पदमें हूं का जाप करते हैं। बौद्ध धर्म के इस मन्त्र को वही स्थान प्राप्त है जो हिन्दू धर्म में गायत्री मंत्र को है। प्रत्येक गोम्पा में महत्वपूर्ण पुस्तकों के भण्डार हैं तथा बौद्ध धर्म की शिक्षा का पूरा प्रबन्ध है।

इस के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश ड्रामा डिवीजन की 'पुछेन' भी है। इस दल में 5 या 6 आदमी होते हैं। 'फुछेन' क्षेत्र के हर गांव में शरद् ऋतु में 15 या 20 दिन अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। इस में तलवार नृत्य अपना विशेष स्थान रखता है। इस में दल का मुख्य बिना कपड़े के पेट के बल तलवार की नोंक पर अपना नृत्य पेश करते हैं। इसी के साथ ही एक मोटा पत्थर रखकर उसे दस या पन्द्रह किलोग्राम के पत्थर से तुड़वाया जाता है। अगर यह पहली चोट के साथ टूट जाए तो यह मानते हैं कि ग्रीष्म ऋतु प्रसन्नता पूर्वक बीतेगी, इसमे सच्चाई है।

जहां तक जात-पात का सम्बन्ध है यहां नीच जाति के लोग बहुत कम हैं। इनके साथ खान-पान का सम्बन्ध तो है, परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध इन से नहीं है। ये लोग यहां के पारम्परिक वाद्यों को बजाते हैं। यहां बहु पत्नी प्रथा आज भी विद्यमान है। यहां के लोग दहेज प्रथा पर विश्वास नहीं रखते। विवाह में भोजन के साथ छंग, आरा, चंगमों के सेवन का विधान है।

❐ कृष्ण कुमार

जोज़िला दर्रा और वीर सिपाहियों की टुकड़ी

बलदेव घरसंघी

ले० कर्नल ठाकुर पृथीचन्द, दूसरी बटालियन, डोगरा रेजीमैंट फरवरी 1948 में मेजर के रुप में सेना के 18 बांलिटियरों की एक टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे, जो लद्दाख की रक्षा व्यवस्था करने के लिए काश्मीर की घाटी से लेह को गई थी। वे वीर सिपाहियों की इस छोटी टुकड़ी को जाड़े, कड़ाके के जाड़े में भी जोजीला दर्रे के पार ले गए। यद्यपि उस समय बड़े जोर की बर्फ पड़ रही थी, किन्तु उनके पास बर्फ से बचने का कोई उपाय नहीं था। जम्मू तथा काश्मीर की रियासती फौज के बचे खुचे भाग में से उन्होंने दो प्लाटूनों की कमान अपने हाथ में ले ली और मई 1948 तक उन्होंने शीघ्र ही 200 स्थानीय जवानों की एक फौज संगठित की। इस समय तक शत्रु बालतिस्तान को जीत चुका था, करगिल पर घेरा डाले था और लेह दर्रे की ओर बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा था। इस थोड़ी सैन्य शक्ति की सहायता से उन्होंने डट कर गुरिल्ला युद्ध में शत्रु का मुकाबला किया। वे बार-२ शत्रु पर धावा करते रहे। वे बड़ी तेज़ी से छिप-२ कर शत्रु पर आक्रमण करते थें। यदि एक दिन वे सिन्धु घाटी में होते तो दूसरे दिन वे उस स्थान से 80 मील की दूरी पर स्थित नुबरा घाटी में दिखाई देते। उन्होंने यह सारी लड़ाई सत्तू खाकर लड़ी। यह अफ़सर अपनी शीघ्र चलने की शक्ति, अदम्य उत्साह और वीरता के कारण ही कठिन संकट के समय लद्दाख की रक्षा कर सका।

कर्नल पृथीचन्द ठाकुर को यह प्रशस्ति-पत्र उनके लद्दाख ऑप्रेशन में महावीर चक्र मिलने पर दिया गया। यह वीर सिपाही लाहुल स्पिति जनपद के खंगसर गांव में 1 जनवरी 1911 को ठाकुर परिवार में

कर्नल पृथी चन्द महावीर चक्र

जन्मे। उनके पिता जी स्वर्गीय राय बहादुर ठाकुर अमर चन्द राईस-ए-आज़म तब लाहुल जनपद के वज़ीर थे। यह वज़ारत कुल्लू व लद्दाख के राजाओं द्वारा इन्हें प्रशासनिक और राजस्व सम्बन्धी ताकतों के साथ विरासत में दिया जाता रहा। अंग्रेज शासन ने भी इसे बनाए रखा। इन्होंने सन् 1929 में हाई स्कूल कुल्लू से दसवीं की परीक्षा पास की और उच्च शिक्षा के लिए श्री प्रताप कालेज श्रीनगर में प्रवेश लिया। इस कालेज में इनकी मित्रता लद्दाख के सोनम नोरबू और गिलगित के अहसान अली से हुई। यह सहपाठी लद्दाख आप्रेशन में भिन्न परिस्थितयों में आमने-सामने हुए।

सन् 1929 में बड़े भाई ठाकुर अभयचन्द के मानसिक रुप से अस्वस्थ होने पर ठाकुर प्रताप चन्द ने वज़ारत का काम सम्भाला और पृथीचन्द ठाकुर को पढ़ाई बीच में छोड़नी पड़ी। सन् 1933-34 में यह 11/17 डोगरा रेजीमैंट में भर्ती हुए और सन् 1936 में इन्हें वाईसराय कमीशन के अन्तर्गत जमादार बना दिया गया। इसी बीच सन् 1936 में ये लाहुल ऊन उत्पादक सभा के प्रधान नियुक्त हुए और अपने कार्यकाल में ऊन व्यापारियों को व्यवस्थित कर मध्यस्थों के चगुंल से बचाया। सन् 1937-39 तक ये लाहुल कुठ उत्पादक सभा के अध्यक्ष भी रहे। इन्हीं दिनों सन् 1937 में इन्हें एक रोचक प्रसंग से गुज़रना पड़ा जिसका महत्व इन्हे बाद में ज्ञात हुआ। लद्दाख के महत्वपूर्ण गोम्पा हेमिस के आचार्य लाहुल में अपने मतावलम्बियों को प्रवचन देने आए हुए थे। आचार्य के कथनानुसार यह उनका लाहुल में अन्तिम यात्रा है और शायद वह आने वाले वर्ष तक जीवित रहें या न रहें। आचार्य जी ने कर्नल पृथीचन्द ठाकुर से दो बार हेमिस गोम्पा को बचाने का वचन लिया। इस घटना के दस वर्ष बाद जब काश्मीर वादी में पाकिस्तानी घुसपैठिए घुस गए और लद्दाख की ओर इनकी दृष्टि पड़ी तब यह उस भविष्यवाणी और आचार्य जी के वचन लेने का महत्व समझ सकें।

इन्हें 18 नवम्बर, 1939 को किंगज़ कमीशन के द्वारा 2nd लेफ्टिनेन्ट बना दिया गया। सन् 1946-47 में 2/17 डोगरा द्वारा पूर्वी व पश्चिमी पंजाब में दंगों के दौरान निभाई गई भूमिका सराहनीय रही। अक्तूबर 1947 में जब यह आदमपुर पंजाब में शरणार्थी केम्प में मुसलिम सम्प्रदाय के लोगों की रक्षा का भार सम्भाले थे तो इन्हें तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री ज्वाहर लाल नेहरु और श्री बलदेव सिंह से हाथ मिलाने का गौरव प्राप्त हुआ। पण्डित नेहरु ने इनसे कहा, "इस देश का मान व सुरक्षा तुम जैसे वीर सिपाहियों के हाथ में हैं। तुम्हारे हाथों में ही स्वतन्त्र भारत सुरक्षित रहेगा।'' इस प्रसंग का इन पर गहरा असर रहा। जब आखिरी शरणार्थी

तक सुरक्षित पाकिस्तान भेज चुके तो उन्हे अपनी धर्मपत्नी की याद आई और छुट्टी लेकर 1 नवम्बर 1947 को धर्मशाला पहुंचे। क्योंकि इनकी धर्मपत्नी धर्मशाला के एक राजपूत गोरखा परिवार से है। लेकिन 4 नवम्बर को ही इन्हे वायरलैस मैसेज मिला कि तुरन्त पठानकोट में अपने यूनिट से सम्पर्क करें। यहां से इन्हें श्रीनगर भेज दिया गया। जहां इनका यूनिट पाकिस्तानी घुसपैठियों को मार भगाने में लगा था। इन्हीं दिनों श्रीनगर में इनकी मुलाकात अपने सहपाठी सोनम नोरबू से हुई जो पी० डब्यु० डी० में डिवीजनल इन्जीनियर के पद पर नियुक्त थे। इन्होंने कर्नल साहिब को बताया कि लद्दाख तो शत्रुओं के लिए खुला पड़ा है। शत्रु खपलू से नुबरा घाटी और सिन्धू घाटी से लद्दाख की तरफ आसानी से घुस सकता है। जबकि जम्मू काश्मीर फोर्स के मुसलिम सिपाही और प्रसिद्ध गिलगित स्काऊटस पाकिस्तानी सेना से मिल गई है और लेह में जम्मू काश्मीर फोर्स की एक ही प्लाटून तैनात है। अगर पाकिस्तानी इस घाटी में घुस जाते हैं तो निश्चिय ही गोम्पा व इसकी सम्पदा को लूटने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। इसी रात स्वप्न में अपने गुरु हेमिस गोम्पा के आचार्य जी को देखा। स्वप्न में आचार्य जी ने इन्हें दस साल पहले दिए गए वचन की याद दिलाई। दूसरे दिन से वे लगातार दिन रात लद्दाख और वहां के गोम्पाओं को कैसे बचाया जाए, के बारे में सोचने लगे।

लाहुली और लद्दाखी सिपाहियों की बटालियन 2 डोगरा में एक राईफल कॉय० का समर्थन था। मेजर पृथीचन्द ठाकुर, खुशहाल चन्द ठाकुर, सूबेदार भीमचन्द व कुल 15 सिपाही ही इस बटालियन में रह गए थे। मेजर पृथी चन्द ठाकुर ने इन सबको लद्दाख की स्थिति के बारे में मंत्रणा करने के लिए बुलाया और काफी सोच के बाद सभी इस नतीजे पर पहुंचे कि लद्दाख को अभी नहीं बचाया गया तो यह पाकिस्तानी सेना के लिए लूट खसोट और हमले का खुला निमन्त्रण होगा। इन्होंने अपने कमांडिंग ऑफिसर को लद्दाख के बारे में बिस्तार से बताया। लेकिन जोजीला दर्रे को जनवरी 1948 के भारी हिमपात के कारण पार करना असम्भव था। वैसे भी क्योंकि इस टुकड़ी की आवश्यकता बारामूला में थी इसलिए इन्हें लद्दाख नहीं भेजा जा सकता था। ऐसा करने का ऊपर से हुकम भी नहीं था।

इसी दौरान लद्दाख यंग बुद्धिस्ट सभा ने तत्कालीन प्रधानमन्त्री को तार भेजा "हम लद्दाख के लोग तीर और कमान से लैस अपनी मातृभूमि की रक्षा को तत्पर हैं। कुपया शस्त्र, गोला बारुद व रीइन्फोर्समेन्ट भेजें।" इस पर तत्काल अमल हुआ। बिग्रेडियर एल० पी० सेन को जनवरी 1948 में इसकी सूचना मिली। इनके पास पूरे कश्मीर की सुरक्षा के लिए एक ही बिग्रेड थी। और जब उसे कश्मीर की सुरक्षा के लिए ही सैन्य शक्ति कम पड़ रही थी तो वह लद्दाख की कैसे सुरक्षा कर सकता था खासकर, जब जोज़ीला दर्रा व पूरी वादी गहरे बर्फ में दबी उसांसे ले रही थी। तब इस टुकड़ी के कमांडर कर्नल बेबूर ने बिग्रेडियर सेन को बताया कि मेजर पृथी चन्द ठाकुर के नेतृत्व में कुछ लाहुल व लद्दाख के बहादुर सिपाही उनसे प्रार्थना कर रहे हैं कि उन्हे लद्दाख भेजा जाए। लेकिन बिग्रेडियर सेन नहीं चाहते थे कि इस छोटी सी टुकड़ी को जानबूझ कर मौत के मुंह में झोंक दें, खासकर जब मृत्यु मुंह बाय खड़ी थी फ़िर भी, यह जांबांज़ सिपाही स्वेच्छा से तैयार थे तो उन्हें कोई एतराज़ नहीं। इस बात पर उन्होंने इस मौत से टक्कर लेने जा रही टुकड़ी को आज्ञा दे दी। साथ में यह हिदायत मिली कि जो भी हथियार युद्ध का साज़ो सामान कपड़े, राशन इत्यादि इन्हे चाहिए वह श्रीनगर में मिल जाएगा। इसके साथ ही इस वीरों में वीर टुकड़ी ने अपने बटालियन के साथियों से भाव-भीनी विदाई ली। इस जांबाज़ टुकड़ी का नाम "X कॉलम" रखा गया।

अपना ग़म औरो को दें औरों का ग़म
लेने से क्या, तेरी कश्ती पार लग जाएगी
इस खेने से क्या, बात तो जब है कि मर
जा अर्सा-गोह-रज़्म में, इसपे दम देने से
क्या और उसमे दम देने से क्या। मज़ाज़।

इन वीरों की टुकड़ी को रसद के नाम पर एक न० 22 वाईरलैस सेट, भेड़ के खाल की बनी जैकेट व दस्ताने और बर्फ से बचने के लिए एक टोपी के अलावा कुछ भी नहीं था। इन्हें एक महीने का राशन, कुछ दवाई और विटामिन की गोलियां और 50 अतिरिक्त राईफल व एम्यूनिशन दिया गया। इस सब साज़ो सामान से युक्त यह टुकड़ी सरफरोशी की तमन्ना लिए कूच करने को आतुर थी। युद्ध भूमि का जुनूं ललकार रहा था और इन वीरों के रगों में खून अज़मते खाके-वतन और गैरत-अहले-वतन के लिए फड़क रहा था। कौन थे ये वीर सिपाही :

1) मेजर पृथीचन्द	महावीर चक्र कमांडर
2) मेजर खुशहाल चन्द	महावीर चक्र
3) सूबेदार भीम चन्द	वीर चक्र
4) नायक मिंडोल	
5) लांस नायक नांवाग	
6) लांस नायक कर्म सिंह	
7) सिपाही फुन्चोग	
8) सिपाही तोबगे राम	वीर चक्र सब लाहुल से
9) सिपाही सोनम	
10) सिपाही लोबंजग	

11) सिपाही टशी छेरिंग

12) सिपाही टशी जंखर

सब लद्दाख से

13) सिपाही बहादुर सिंह, किनौर से

14) सिपाही दलीप सिंह

15) नायक पटवारी मल दोनो कांगड़ा से

16) अभियन्ता सोनम नोरबू लद्दाख से

इन जांबाज़ रण बांकुरों को 2 डिवीजन के मेजर जनरल लखिन्दर सिंह से निम्नलिखित हिदायतें मिलीं।

1) तुम लेह की तरफ कूच करोगे।

2) तुम अनियमित सेना खड़ी करके उसे ट्रेनिंग दोगे।

3) तुम लद्दाख की सुरक्षा दुश्मनों के घुसपैठियों को रोक कर करोगे व तुम्हारे ज़िम्मे महत्वपूर्ण स्थान व पुलों की रक्षा करना है।

4) तुम डिवीजन अभियन्ता सोनम नोरबू के सहयोग से हवाई पट्टी का निर्माण करोगे।

5) तुम्हें दुश्मनों को गोरिल्ला युद्ध द्वारा तब तक उलझाए रखना है जब तक कि नियमित सेना वहां पहुच नहीं जाती।

6) तुम्हे करगिल-तक की लाईन ऑफ कम्यूनीकेशन को खुला रखना पड़ेगा।

7) अन्त में, तुम्हे स्थानीय खरीद द्वारा स्थानीय संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

इस आर्डर के मिलते ही यह टुकड़ी गुण्ड नामक स्थान के लिए श्रीनगर से 3 टन गाड़ियों में कूच कर गई। लेकिन भारी हिमपात के कारण गाड़ी गुण्ड से 2 मील पीछे रुक गई और वहां से सारा सामान कुलियों द्वारा ढोया गया। शाम होते-होते यह टुकड़ी गुण्ड पहुंची। यहां पर चार दिन तक लगातार भारी हिमपात होता रहा। यहां पर तैनात लेबर आफिसर गुलाम मुहम्मद ने इनकी मदद करने में काफी ढिलासी दिखाई। मुसलिम संप्रदाय से सम्बन्ध रखने के कारण इनकी सहानुभूति पाकिस्तान की तरफ थी और कुली भी इसी समुदाय से सम्बन्ध रखते थे और इनकी सहायता के बिना यह काम कठिन था। इस टुकड़ी के कमांडर द्वारा श्रीनगर शिकायत करने पर आपात आफिसर श्री डी० पी० धर ने उसे खूब डांट पिलाई और गुलाम मुहम्मद ने कुलियों का इन्तज़ाम कर दिया। 24 फरवरी 1948 को यह टुकड़ी आठवें दिन सोनमर्ग पहुंची। यहां पर जम्मू काश्मीर रियासती फौज के बिग्रेडियर फकीर सिंह जो एक राइफल काय के साथ एक महीने से तैनात थे से ये लोग मिले। बात-चीत के दौरान जब मेजर पृथी चन्द ठाकुर ने उनसे कहा कि वह दूसरे दिन बालाताल और वहां से लेह की ओर कूच करेंगे तो उन्होने मेजर को जोजीला दर्रे की खौफनाक स्थिति से वाकिफ कराया और कहा कि अगर इसे पार करना ही है तो मार्च के महीने में ही किया जा सकता है। लेकिन इस जांबाज़ टुकड़ी ने इस तरह की मौत से आंख मिचौली रोहतांग दर्रे में कई बार खेली थी इसलिए यह उनके लिए कोई नई बात नहीं थी। वैसे भी इन शबाबे-खूगरे-दारो-रसनों को किस बात का डर था यह तो ज़ज़्बाए-हुब्बे-वतन से ओत-प्रोत थे।

दूसरे दिन इस दल ने बर्फबारी में भी बालाताल की तरफ कूच किया। बालाताल में बड़ी मुश्किल से बर्फ के नीचे दबे विश्राम घर को ढूंढा जोकि चिमनी को छोड़कर सब गहरे बर्फ में दबा पड़ा था। काफी मेहनत के बाद वे बर्फ हटाने में मुश्किल से सफल हुए। कड़ाके की ठण्ड में वे लोग इसमें बड़ी मुश्किल से घुस पाए। लेकिन लगातार बर्फ वारी के कारण कुली लोग डर गए थे और श्री हबीब लोन जो सोनमर्ग से इनके साथ आए थे ने जानकारी दी कि यह लोग रात को भागने की सोच रहे हैं। इस प्रकार कड़ाके की सर्दी में भी सड़क के क्रॉसिंग पर चैक पोस्ट डालना पड़ा ताकि इन भगोड़ों को भागने से रोका जा सके। दूसरे दिन 26 फरवरी को तेज़ हवा और बर्फानी तूफान चल रहा था और दृष्टिनिपात 10 गज़ से ज्यादा नहीं था। लेकिन यह टुकड़ी बालाताल से इस खतरनाक मौसम में भी कूच कर गई। और आगे था दिल दहलाने वाला जोजीला दर्रा जो इस वक्त तेज हवाओं और बफानी तूफान के कारण दिखाई नहीं दे रहा था पर इसकी भयानकता का भयावह अहसास तो साथ था। इस दर्रे की सख्त चढ़ाई और तेज़ हवा और बफानी तूफान से रण बांकुरों के गाल व नाक की चमड़ी छिल रही थी। दल के नेता से कई बार विनती हो चुकी थी कि इस वक्त वापिस मुड़ा जाए और जब मौसम साफ़ हो तो फिर कोशिश की जाए। लेकिन मेजर पृथीचन्द ठाकुर नहीं माने और भगवान से सहायता के लिए विनती की। अभी नहीं तो कभी नहीं: क्योकि-लद्दाख के लोग असमंजस की स्थिति में थे कि कौन पहले पहुँचता है, दुश्मन के घुसपैठिए अपनी दरिन्दगी लेकर या फिर "Xकॉलम' के रुप में भारतीय सेना सुकून लिए। मेजर साहिब जानते थे कि अगर पाकिस्तानी हमलावर पहले पहुंच गए तो वह ज़िन्दगी भर अपने आप को कोसते रहेगें और यही बात दूसरों की थी। दल के कमांडर ने दिल की गहराईयों से भगवान को याद किया और हार्दिक विनती की कि वह चाहे उनकी जान ले ले लेकिन उन लोगों की जान की रक्षा के लिए जो हमसे उम्मीद लगाए बैठे हैं हमारी सहायता को आए। और यह क्या, भगवान ने इनकी बात

सुन ली। कुछ पल के बाद ही बादल छटने शुरु हो गए, तेज़ हवा रुक गई और सूरज का तेज़ प्रकाश आशा की किरण लिए इन बादलों के पीछे से अनायास फूट पड़ा। चहुं ओर उद्घोष होने लगे। अल्लाह-हो-अकबर, जय हो भगवान और संगे कोन्चोग। इस तरह हर एक अपने-२ प्रभु को याद करते हुए जोजीला के पश्चिमी अन्त के ऊपर गुमरी पहुंचे। यहां पर भी प्रभु कृपा से ह्रास और मतयान के सुदृढ़ व हृष्ट-पुष्ट कुलियों ने कश्मीरी कुलियों का स्थान लिया। यहां से दल के नेता ने कश्मीरी कुलियों को वापिस भेज दिया।

जब आगे बढ़ने पर यह टुकड़ी गुमरी और भयोग के बीच चल रही थी तो ऊपर एक बहुत बड़ा हिमस्खलन दहाड़ता हुआ नीचे की तरफ आ रहा था और हर कोई कमर तक बर्फ में धसा होने से भाग भी नहीं सकते थे तो इस संकट के समय फिर सबने अपने-२ प्रभू को याद किया। और क्या! फिर चमत्कार हुआ। क्योंकि भगवान ने सबकी फरियाद सुन ली थी और हिमस्खलन इनसे सिर्फ 20 ग़ज दूर आकर शान्त होकर रुक गया। सबके मुंह से अपने-२ भगवान का नाम उद्घोष रुप में निकला और इस तरह वे देर रात मचोई पहुंचे और वहीं पर पड़ाव डाला। मचोई में श्रीनगर और लद्दाख के बीच एक तरफा टेलीफोन लाईन के आप्रेटर, जो कश्मीरी पण्डित थे, ने इन्हें सुझाव दिया कि अगले दिन जब तक मौसम साफ नहीं होता और जब तक सूरज नहीं निकलता आगे बढ़ना कठिन होगा। इस सुझाव को इन्होंने मान लिया। इसे मानने से इनको न सिर्फ तेज़ हवा और बर्फानी तूफान से बचाव हुआ बल्कि वे उस नाले को भी साफ मौसम में आसानी से पार कर गए जहां इसी प्रातः बहुत बड़े हिमस्खलन ने कहर ढाया था। इस प्रकार यह टुकड़ी आसानी से मतयान पहुँची जो लद्दाख के करगिल ज़िले का पहला गांव है। मेजर पृथी चन्द ने यहां से श्रीनगर को सफलतापूर्वक जोजीला दर्रे को फतह करने का समाचार भेजा और जवाब में बिग्रेड और जम्मू और कश्मीर गवरनमैन्ट से बधाई का सन्देश मिला 'हिट्स ऑफ टू यू एण्ड युअर मेन, विश यू ऑल सक्सेस, 'हरटियस्ट कंग्रेचुलेशन्ज़''।

भारतीय टुकड़ी के स्वागत के लिए पारम्परिक लोक नृत्य पेश करते हुए स्थानीय लद्दाखी

3 मार्च 1948 को इस टुकड़ी ने मूलबेग की ओर रवानगी ली और शाम को इस गांव में पहुंचे। यह बोध धर्म के मतावलम्बियों का पहला गांव है। जब गांव वालों को पता चला कि भारतीय सेना की जांबाज़ टुकड़ी पहुंचने वाली है तो सब गांव के लोग समूह में इनके स्वागत के लिए उमड़ पड़े। वह सब हाथों में सतू, दहीं, दूध और जौ की शराब लिए खड़े थें। उनमें कुछ तो भावावेशवश ज़मीन पर ही लेट गए। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि फरवरी के इस महीने में भारतीय सेना जोजीला दर्रे को पार कर उनकी रक्षा के लिए पहुंच सकती है। एक बूढ़ा लामा जो कि लंगड़ा था और हमलावरों के आने पर भाग नहीं सकता था ने मेजर पृथीचन्द ठाकुर को बताया कि उसके मुसलमान पड़ौसी ने उसे कलीमा सिखाया ताकि हमलावर आएं तो वह इसे अपना बड़ा भाई कहकर बचाएगा। ऐसे हालात में उन लोगों का अचरज करना स्वाभाविक था।

दूसरे दिन यह टुकड़ी लामायुरु पहुंची और यहां पर इनका भव्य स्वागत हुआ और यह सिलसिला तब तक खत्म नहीं हुआ जब तक इन्होंने ब्रिटिश रेज़ीडेन्सी में अपना डेरा नहीं जमा लिय। एक दिन लामायुरु में आराम करने के पश्चात आठवें दिन यह टुकड़ी नेमों पहुंची और यहां से दूसरे दिन लेह की तरफ रवाना हुई।

स्पीतुक गोम्पा के पास यंग बुद्धिस्ट सभा ने चाय का इन्तज़ाम करके रखा था। यहां से चाय का आन्नद लेकर जब ये लेह से कुछ फर्लांग पीछे थे तो लगभग सौ घुढ़ सवारों का दल उनके स्वागत के लिए आया हुआ था। इनमें चीनी, लद्दाखी, भारतीय व्यापारी, हिन्दू ,मुसलिम, ईसाई, और बोध धर्मावलम्बी अपनी-२ संस्थाओं की अगुवाई कर रहे थे। कुछ देर के लिए वीर जवानों की टुकड़ी इस भीड़ में खो गई। यहां से जब यह समूह लेह पहुंचा तो स्थानीय बैंड लोकल धुन बजा रहीं थी। यहां से सबको दोनयोद साहिब, जो सोनम नोरबू के ससुर थे, के घर पर चाय को आमन्त्रित किया गया। इसके बाद लेह के सीनियर तहसीलदार ने मेजर पृथी चन्द ठाकुर को सलाह दी कि वह अपना पोस्ट मिट्टी से बने लेह के किले में स्थापित करे लेकिन इन्होंने इसे ठुकरा दिया और इसकी जगह पर अंग्रेज संयुक्त कमिशनर के रेज़ीडैन्सी को चुना जिसके आगे लम्बे गोल पर यूनियन जैक, ब्रिटेन का झण्डा लहरा रहा था। दूसरे दिन लेह के सब गणमान्य व्यक्ति इनसे मिले। मेजर पृथी चन्द ठाकुर ने13 मार्च 1948 को सबको तिरंगा झण्डा लहराने की रस्म पर आमन्त्रित किया ताकि सबको भारतीय सेना के आगमन के मकसद का पता चल सके। इन्होंने आम जनता तथा लामाओं से उस दिन प्रार्थना करने के लिए व स्थानीय बेंड की धुन बजाने की भी विनती की। स्थानीय व्यापारियों ने इस मौके पर आए सभी जनसाधारण को चाय पिलाने की इच्छा प्रकट की जो मंजूर कर ली गई।

(शेष पृष्ठ 26 पर)

रोहतांग दर्रे पर तेंतीस घटें का संघर्ष

✍ शेर सिंह

चार्लस डारविन ने इस धरती पर विचरण करने वाले प्राणियों के लिए लिखा था कि वही प्राणी अपने अस्तित्व को बचाए रख सकेगा जो सबसे समर्थ होगा। यह बात सत्य साबित होती है। हम हर प्राणी को संघर्षरत देखते हैं, संघर्ष ही जीवन है।

रोहतांग दर्रा समुद्रतल से 13050 फुट ऊंचा,मध्यम ऊंचाई का एक दर्रा है जो ज़िला कुल्लू और ज़िला लाहौल स्पिति की सीमाओं को एक दूसरे से जोड़ता है। परन्तु अपने हर रोज़, हर पल बदलने वाले मौसमी रुप के कारण मौत का दूसरा रुप भी है। रोहतांग का शाब्दिक अर्थ है शवों का टीला, यह बात सत्य लगती है। प्राचीन काल से आज तक हज़ारों जानें इस रोहतांग की बलि चढ़ गई होंगीं। विशेषकर मार्च व अप्रैल के दौरान पैदल यात्रा करने वाले अधिकतर लोग रोहतांग में अपनी जानें इस लिए गंवा देते हैं कि रोहतांग के अनेक मौसमी रुपों का अनुमान किसी को नहीं होता। सरकारी बचाव दल जो कि मढ़ी व कोखसर में मार्च व अप्रैल के महिनों में तैनात रहते हैं रोहतांग के बदलते मौसमी रुप का अध्ययन करके पैदल यात्रियों को मार्गदर्शन कर अनेक जानें बचाने में सफल रहे हैं। बेशक अब गर्मियों के दौरान यातायात की सुविधा मनाली से लेह तक लाहौल व लेह वासियों को मिलने लगी है जिससे जन-जीवन सरल होने लगा है। 70-80 के दशक से पहले जब सड़कें नहीं बनी थीं सारा लाहौली जन-जीवन पैदल यात्रा पर आधारित था। कुछ समर्थ लोग ही राशन आदि का जुगाड़ घोड़ों, खच्चरों द्वारा राहला नामक स्थान से कर सकते थे जो उस समय मनाली और लाहौल स्पिति के मध्य एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था, यहीं से लाहुल स्पिति के लिए सारा सामान सप्लाई होता था। परन्तु अधिकतर लोग अपने सामान को अपनी पीठ पर लाद कर ले जाते रहे हैं तो पैदल यात्री गर्मियों या सर्दियों में रोहतांग दर्रे की पैदल यात्रा से कहां बच सकता था।

बात 4-5 अप्रैल 1966 की है, मैट्रिक की परिक्षाएं समाप्त हो गई थीं। घर जाने की शीघ्रता थी। हम चार पांच मित्र जो कि अभी-२ मैट्रिक की परीक्षा से फारिग हुए थे मनाली में इकट्ठे हुए। विचार विमर्श के बाद 4 अप्रैल को मनाली से लाहुल रवाना होने का प्रोग्राम बन गया। दिन भर सामान जुटाने, जैसे गर्म जुराबें, शिकारी बूट, मंकी केप, धूप की ऐनक, रास्ते के लिए एक दिन का खाना तथा गर्म ऊनी कपड़े आदि का जुगाड़ करते-२ कैसे दिन गुज़र गया पता ही न चला। सांय 4 बजे मनाली से रवानगी आरम्भ हो गई हम पांच लड़के, उनमें से एक लड़के की दो बहने तथा एक बहन के दो बच्चे, कुल नौ जने थे। बच्चों में एक बारह साल की लड़की तथा दूसरा नौ साल का लड़का था। मौसम अच्छा था सांय काल टहलते हुए रई और तोस के ऊंचे पेड़ों के मध्य सर्पनुमा सड़कों द्वारा इधर-उधर की बातें करत हुए कैसे कोठी नामक गांव में पहुंचे इस का अन्दाज़ा न हुआ। कोठी से लगभग दो फर्लांग उपर राहला के इस छोर से हमें वह गुफानुमा होटल नज़र आया जहां हमने रात गुज़ारनी थी। पेड़ों की शाखाओं से सांय सांय की आवाज़ आती थी जो रोहतांग दर्रे की ठडीं बर्फीली हवा का एहसास कराती थी, आकाश में बादलों के हलके-२ टुकड़े तैर रहे थे। हम सभी लोग रोहतांग दर्रे की यात्रा सर्दियों के दौरान पहली बार कर रहे थे। अत: सर्दियों के रास्तों की जानकारी नहीं थी। फिर भी आशा थी कि राहला होटल में 40-50 लोग तो ज़रुर होगें उनके साथ-२ पैदल यात्रा करेंगे तो कोई तकलीफ न होगी। अब अंधेरा घिरने लगा था राहला होटल से मद्धम रोशनी दिखाई देने लगी थी। जब हम होटल पहुंचे थे तो हमारा अन्दाज़ा ठीक ही था वहां पर 40-50 लोग पहले ही पहुंच चुके थे। होटल का मालिक लाहौल का रहने वाला एक सज्जन व्यक्ति था हमारे लिए उसने खाने तथा बिस्तर आदि का प्रबन्ध किया। बाकी यात्रियों के साथ विचार विमर्श करने के बाद तय हुआ कि सुबह 4-30 बजे चाय पी कर राहला से यात्रा शुरु होगी। सभी खाना खाने के बाद शीघ्र ही सो गए थे।

सुबह काफी देर बाद नींद टूटी। हड़बड़ाहट में मैं जब उठा तो शायद 8-9 बजे का समय हो गया था कुछ लोग सोए हुए थे पूछताछ के बाद पता चला कि सारी रात बारिश होती रही थी अभी भी वर्षा थमी न थी। प्रतीक्षा भी की कि थम जाए। मैंने अपने साथियों को जगाया। तब तक गर्म-२ चाय आ गई थी। चाय पी कर बाहर निकले। अभी भी बून्दाबान्दी हो रही थी। हमने देखा कि दो व्यक्ति जो सम्भवत: केलंग के रहने वाले थे ने अपना किल्टा कस लिया था। विचार विमर्श चलता रहा कि एक दिन राहला में ही विश्राम करें या राहला और मढ़ी के बीच 'निम्न गुफा' तक यात्रा करके वहां एक दिन और रात काटें अथवा रोहतांग की यात्रा आरम्भ करें। अधिकतर लोग निम्न गुफा के लिए रवाना होने लगे। क्योंकि उनके पास राशन, वर्तन आदि मौजूद थे। हमारे पास

केवल एक समय का खाना ही उपलब्ध था। वे दो यात्री चल पड़े। विचार विमर्श करने के बाद उनके पीछे-२ हम भी चल पड़े थे। हमने सोचा कि जब वे दो यात्री जिनके पास भारी सामान था रोहतांग की यात्रा कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं! हम जवान थे, जवानी का जोश था, सामान हमारे पास भारी नहीं था। स्त्रियां व बच्चे जो हमारे साथ थे, भी तैयार हुए। सम्भवत: हम 11-12 बजे मढ़ी पहुंच चुके थे तो मौसम एक दम से बदला हुआ पाया। दूर-२ तक कुछ भी न दिखाई देता था चारों ओर सफेद धुंए जैसी धुन्ध छाई हुई थी। सफेदी थी परन्तु दो कदम पर हम एक दूसरे को देख नहीं सकते थे। हवा भी चल रही थी, ठंड एक दम से बढ़ गई थी, बर्फ बारी हो रही थी। भूख भी लगी थी। खाना खाने लगे। परन्तु सबसे अचम्भे की बात तो यह थी कि उन दो यात्रियों के कदमों के निशान भी नहीं मिल रहे थे। पीछे से किसी यात्री के आने की सम्भावना भी नहीं थी। हमारे कपड़े, चादर इत्यादि वारिश से पहले ही भीग गये थे, अब ठंड से अकड़ने लगे थे। दोबारा मनाली वापिस जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था एक तो हमारी दिलेरी पर प्रश्न चिन्ह लगता। लोग कहते कि देखो ये कैसे जवान हैं रोहतांग दर्रे से भाग कर आएं हैं अत: सभी की इच्छा थी कि आगे बढ़ा जाए। यदि भगवान ने चाहा तो हम ज़रुर खोकसर पहुंच जाएंगे।

मढ़ी से रवानगी हो गई। हमें मालूम था कि अब हमने तिरछा चलकर 'रानी नाला' पहुचना है। जैसे कि मै पहले ही बता चुका हूं कि हमें सर्दियों वाले रास्ते की जानकारी नहीं थी। यही कोई एक किलोमीटर ही चले होंगे, बच्चों के चलने की गति धीमी हो गई उनको भूख भी लगी थी, परन्तु उन्हे खिलाने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं बचा था। बच्चे थकने लगे थे। क्योंकि अनुमान था कि अब तक पांच फुट के लगभग ताज़ी बर्फ पड़ गई होगी। और ताज़ी बर्फ पर रास्ता निकालना सबसे बड़ी कठिनाई थी। हर दो कदम पर हम पांच लड़के बारी-२ सबसे आगे बढ़कर रास्ता बनाते और पांचों लड़के सबसे आगे चलते उनके पीछे दो स्त्रियां और अन्त में दोनों बच्चे। अब बच्चों ने हाथ खड़े कर दिए थे। हम ऐसे मंझदार में फंस गए थे कि न आगे बढ़ते बनता था और न पीछे हटने की गुंजाईश थी। सम्भवत: हम रानी नाले के आस-पास पहुंच चुके थे। नवांग और मैंने हिम्मत की। हमने अपना-२ पीठू बैग अपने

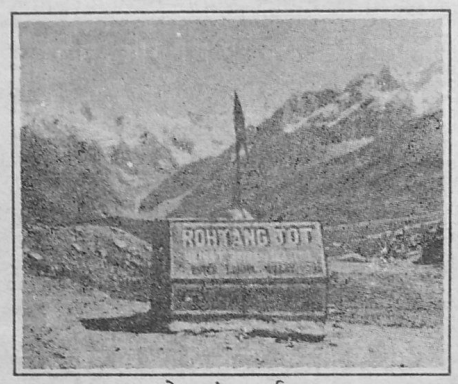

रोहतांग दर्रा

साथियों के सपुर्द किया। 9 साल के लड़के को नवांग ने अपनी पीठ पर उठाया और लड़की जो 12 साल की थी मैंने अपनी पीठ पर उठाया। अब रास्ता बनाने वालो की संख्या घट गई थी। पहले पांच लड़के रास्ता बनाते थे अब हम दोनों की पीठ पर बच्चे होने के कारण हमारा नम्बर सबसे पीछे लगा। फिर धीरे-२ एक-एक कदम बढ़ाते हुए आगे बढ़ने लगे। हवा की गति कम थी। बर्फ लगातार गिर रही थी। चारों ओर अंधेरा पहले जैसा ही छाया हुआ था। धुन्ध कभी-२ हल्की होती तो एक पल के लिए हम कुछ दूर तक देख सकते थे। हमने अचानक रानी नाले की पचासों फुट गहरी खाई को देखा। मुंह से अनायास सी-सी की आवाज के साथ हमारे कदम रुक गए उस समय 'रानी नाला' बड़ा ही भयानक लग रहा था। ऊपर से लेकर नीचे तक इतनी सीधी ढलानदार खाई नज़र आई कि मानों हम पहाड़ चढ़ रहे हों। मेरा सिर चकराने लगा था। भगवान का नाम लेकर आगे बढ़ते रहे। कदम-कदम मौत का पैगाम लेकर आया था। उस ढलानदार पर्वतनुमा खाई को चीर कर हम 'रानी नाला' के दूसरी छोर पर पहुंचना चाहते थे; किसी भी व्यक्ति के फिसल कर गिर जाने से पचासों फुट गहरी खाई में गिर कर मौत के मुंह में जा सकते थे। लगभग एक घंटा फूंक-फूंक कर कदम रखते हुए हम 'रानी नाला' के दूसरी ओर पहुंच गए थे। उस समय हम इस बात से बेखबर थे कि यह रास्ता कितना भयानक था। आज मैं जब प्रौढ़ हो गया हूं सोच-कर घबराता हूं कि इस संसार में अनुभवहीन व्यक्ति किस तरह से कई मुसीबतों में फंस जाता है। यह सारा हिमस्खलन क्षेत्र है, ताज़ी बर्फ में तो जिस तरह हम ढलानों को तिरछा काट कर पैदल चल रहे थे, शतप्रतिशत हिमस्खलन को आमन्त्रित कर रहे थे। हमारे बुजुर्ग हमें बताते हैं कि ताज़ी बर्फ में हिमस्खलन क्षेत्र में तो ऊंचा बोलना भी गुनाह है। बर्फ में थोड़ी सी कम्पन आ जाने से हिमस्खलन की संम्भावना बनी रहती है। शायद कुदरत को हमारी अज्ञानता पर तरस आ रहा था और हमें उस दिन कुदरत ने क्षमा कर दिया था। वरना हम सभी पचासों फुट 'रानी नाला' की खाई में हजारों टन बर्फ के ढेर के उस कोने में दफन हो जाते जिसका एक वर्ष तक किसी को अनुमान भी न होता।

हम खुश हो रहे थे कि हम 'रानी नाला' को पार कर रोहतांग दर्रे के काफी निकट आ गए थे। बर्फ लगातार एक ही रफतार से गिर रही थी। अब तो रास्ता लगाने वाले के कन्धे तक बर्फ पहुचती थी दो कदम के बाद ही रास्ता बनाने वाला पीछे हटने लगता। रास्ता बनाने वाला एक कदम रखते ही कन्धे तक बर्फ में धंस जाता और बहुत संघर्ष करने के बाद ही अपने शरीर को अपने पीछे दायं बायं हिलाकर छुड़ाता और अगला

कदम रखते हुए फिर वही दुर्गति होती थी। न कोई उस समय बोलता था जैसे सभी गूंगे हो गए हों, केवल मूक संघर्ष हर कोई कर रहा हो। इशारे से एक दूसरे को आगे-२ भेजता तथा आगे वाला थक कर पीछे हटता। यह सारा कार्य मशीनों की भांति होता था।

अब चारों ओर अन्धेरा गहरा होता चला गया। भूख लगकर, कब की मर चुकी थी। सभी एक ही उद्देश्य को लेकर चल रहे थे कि किसी तरह रोहतांग दर्रे पर पहुंचना होगा। दर्रे पर पहुंचने की मानो बड़ी शीघ्रता थी रोहतांग दर्रे के नीचे जहां गर्मियों के दौरान टेंट के होटल लगते हैं शायद हम उस जगह पहुंच चुके थे। हमारे बीच में मतभेद हो गया। एक टोली में छोपेल था और दूसरी में हम सभी। छोपेल ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया हम अपने आप को ज्यादा अनुभवी मान कर छोपेल की परवाह न करके चल पड़े थे। 7-8 कदम चलने के उपरान्त हमने पीछे मुड़कर देखा तो छोपेल को न पाकर वापिस उसी स्थान पर आना पड़ा। उसने हमें होटल की एक दिवार का भाग दिखाया। वहां से हमें अन्दाजा हुआ कि हम गलती पर थे।

अचानक अन्धेरा छा गया था हम यही सोचकर आगे बढ़ने लगे कि धुन्ध और घनी हो गई है। परन्तु यह तो रात होने का संकेत था। एक दम से सभी घबरा गए अब तो दिन भर के संघर्ष मिट्टी में मिलता हुआ साफ दिखाई देता था। शायद कुदरत ने हमें बड़े यत्न से रास्ते भर बचाकर मरने के लिए रोहतांग दर्रे पर पटक दिया था। हमने मनाली में सुना था कि 4-5 दिन पहले 7 गोरखे रोहतांग दर्रे पर भटक जाने से मृत्यु को प्राप्त हुए थे। शायद अब हमारी बारी थी। सभी के मुंह से फुसफुसाने की आवाजें आ रही थी निस्सन्देह सभी अपने ईष्ट देव से मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे कि हे देव, हे भगवान हमें इस बार बचाओ, किसी तरह बचाओ, हे राजा चेपन, मैं आपके लिए जग देने का वायदा करता हूं, मैं आपके मन्दिर में चांदी का बकरा चढ़ाऊंगा इत्यादि-२ फुसफुसाने की आवाज़ें स्पष्ट सुनाई देती थी। सबने चलना बन्द कर दिया था कुछ बर्फ पर बैठ गए थे मानो समय चलते-२ रुक गया हो। मानो सबकी शक्ति क्षीण हो गई हो। कोई भी किसी को आगे रास्ता निकालने के लिए प्रेरित न करता था क्योंकि अब तक जिस जोश के साथ आगे बढ़ने का उल्लास सबके चेहरों पर झलकता था मानो गायब हो गया हो क्योंकि अब हमारे बचने की उम्मीद खत्म हो गई थी। हम नौ जने इतने नज़दीक एक दूसरे के सटकर बैठ गए थे कि एक दूसरे की सांस से निकलने वाली आह साफ सुनाई देती थी। फिर भी हम एक दूसरे के चेहरे की ओर देखते और कोई संकेत पाने की कोशिश करते। हर पल एक व्यक्ति सभी के चेहरे की ओर देखता कभी स्त्रियों की तरफ और कभी बच्चों की तरफ और कभी एक दूसरे को आंखो ही आंखो में संकेत देता। मानो कह रहा हो कि चलो छोड़ों इन्हें, चलो भाग चलें अपनी-२ जान बचाएं। मैं तो आज भी इसी परिस्थिति को सामने रखकर सोचता हूं कि यदि संकेत में किसी ने अपनी-२ जान बचाने के लिए फिर कह दिया हो तो इसमें कोई बुराई नहीं, पाप नहीं है और न ही खुदगर्ज़ी है वरन् हर कोई ऐसी परिस्थिति में घबराकर सबसे पहले अपनी जान बचाने की ही कोशिश करता है कि मैं किसी तरह बच जाऊं मेरा मित्र, सम्बन्धी चाहे वह जिगर का टुकड़ा ही क्यों न हो बचे न बचे। उस अंधेरे में मैं बार-२ भगवान को याद कर रहा था। कोई रास्ता बचने का ढूँढने की कोशिश कर रहा था और अपने भाग्य को कोस रहा था कि देखो मेरा इनके साथ न हो कर उन केलंग वालों के साथ रोहतांग दर्रा पार करना होता तो शायद मैं बच जाता। यही सोच-२ कर मैं मर रहा था कि अंधेरे में तीन साथी ओझल हो गए थे। इसका अहसास तब हुआ जब दोनों स्त्रियों ने रोना शुरु कर दिया। बच्ची भी रोने लगी जो मेरी पीठ पर थी लड़का बर्फ के ऊपर लुढ़क गया था और रोने लगा था मैंने भी जब लड़की को पीठ से उतारा तो स्त्रियों की चीख पुकार बढ़ने लगी और विलाप करने लगी कि अब आप भी हमें छोड़कर चले जाएंगे जैसे कि दूसरे तीन मित्र बिछुड़ कर गए थे। मैं कभी स्त्रियों की ओर देखता, कभी रोते हुए बच्चों की ओर कभी उन स्त्रियों के भाई की ओर देखता जो गूंगा हो गया था उसके मुंह से एक भी शब्द नही निकल रहा था। मेरे से उनके उदास चेहरों को न देखा गया और मुझे अपनी गलती का अहसास हो गया कि क्या गारंटी है कि मैं इन्हे छोड़कर अपनी जान बचा पाऊंगा, मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि 'मैं उन्हें छोड़कर नहीं जाऊंगा' और 'हम सभी बच जाएंगे' रोहतांग दर्रे पर सराय है हम वहां उसे ढूंढ लेंगे। इतना कहने पर शायद उनमें स्फूर्ति आई जैसे बचने की एक आशा की चिंगारी नज़र आई हो एक दम से सभी खड़े हो गए। और एक से एक आगे बढ़ने की कोशिश करता। हम कुछ ही मिनटों में रोहतांग दर्रे पर थे क्योंकि अब उतराई शुरु हो गई थी। मैंने पूरे रोहतांग का नक्शा अपने दिमाग में बनाया और अनुमान लगाकर हम उतराई उतरने लगे। अधिक देर तक उतराई का अर्थ था हम 'हरचा' पहाड़ की ओर बढ़ रहे हैं जो कि घातक हो सकता था। अतः थोड़ी उतराई उतरने के बाद फिर मामुली सी चढ़ाई आ गई थी। मेरे दिमाग ने चेताया कि अब चढ़ाई न चढ़ो। और यहीं पर मैंने उन्हें रोक दिया। उस समय बर्फ की गति धीमी हो गई थी। अन्धेरा इतना हो गया था कि हम एक दूसरे को दो कदम पर न देख सकते थे, हमने एक दूसरे के हाथ पकड़े हुए थे ताकि बिछुड़ न जाएं। उनसे आग्रह किया कि अब हमें कहीं न जाना चाहिए यहीं डेरा डालना

होगा। उस समय शरीर में थकान नहीं के बराबर थी और न भूख लगती थी और न प्यास। हम दोनों लड़कों ने उसकी बहनों के किल्टे उतारे। किसी चीज की तलाश में उनके किल्टों के अन्दर कुछ ढूँढने लगे। कुछ कपड़े एक दो बर्तन हाथ में आए। जब बर्तन भी थे तो हां, एक कड़छी भी होगी। ढूँढने पर मुझे कड़छी भी मिल गई। कड़छी निकाल कर बर्फ हटाकर कुछ गढे जैसा बनाने का असफल प्रयास करता रहा। मुझे कार्य करता देख कर उन्होंने हाथों से पैरों से बर्फ हटाना शुरु किया। वे समझ गए कि मैं एक गढ़ा बना रहा हूं। एक गहरी जगह बन गई थी। सभी कपड़े जो किल्टे के अन्दर थे और जो हमारी पीठू बैग के अन्दर थे, बिछाए गए। किल्टों को गहरी जगह के इधर-उधर उल्टे करके रखे गए। जो चादरें हमने ओढ़ रखी थी और जो ठंड से अकड़ गई थी कुछ-कुछ ऐसे सख्त हो गई थी जैसे टीन की चादर हो। दोनों किल्टों के ऊपर इस तरह बिछाने लगे जैसे कि छप्पर का काम करें। और सभी छः जने उस गहरी जगह में दुबक गए और इतने सटकर बैठ गए कि थोड़ी देर में शरीर में थोड़ी बहुत गर्मी महसूस होने लगी। इतना जरुर है कि राहला से लेकर रोहतांग दर्रे तक पहुंचने के दौरान हमें ठंड बिल्कुल महसूस नहीं हुई थी। क्योंकि लगातार चलते रहने से शरीर में गर्मी रही। मगर थोड़ी देर के लिए जब हम खड़े हो गए थे तो ठंड के कारण शरीर कांपने लगा था। हां जब थोड़ी सी गर्मी महसूस हुई तो नींद आने लगी थी। मगर हम एक दूसरे को सावधान करते रहे कि नींद न करें। नींद के कारण हमारा शरीर अकड़ सकता था और हम मर भी सकते थे।

रात्रि काफी देर बाद आकाश साफ होने लगा चांद भी चमकने लगा था तो हमने इधर-उधर देखा हमें कुछ अन्दाजा हुआ कि हम कहां पर स्थित थे। चारों ओर बर्फ की सफेद चादर चांदनी रात में चमकने लगी थी। हम सराय से ऊपर एक गहरी जगह में दुबके हुए थे मगर हम सराय देख नहीं सकते थे अनुमान था कि हम सराय से लगभग २ फर्लांग दूर रह गए थे। आसमान साफ होने के कारण ठंड महसूस होने लगी। शरीर में कम्पन शुरु हो गई थी। दांत बजने लगे थे। मैं सिगरेट नहीं पीता था। मेरा मित्र टशी सिगरेट पीता था मैंने उससे सिगरेट मांगा। उसने पनामा की सिगरेट का पैकेट मेरी ओर थमाया। एक-एक जला कर टशी और उसकी बहनों की ओर बढ़ाया। मैं और टशी तो कश लगाने लगे मगर उसकी बहनों ने उंगलियों में चुपके से दबाऐ रखा मैंने उनसे अनुरोध किया कि ज़ोर से कश लगाएं, गर्मी मिलती है। थोड़ी देर टालमटोल करने के बाद उंगलियों में दबा कर वे भी पीने लगी थीं। उन्हें भी गर्मी महसूस होने लगी थी। शायद मनो वैज्ञानिकता के कारण ही हमें गर्मी मिल रही हो। हमने बुर्जुगों से सुन रखा था कि ठंड लगने पर बीड़ी सिगरेट पीने से शरीर गर्म हो जाता है। और लगभग सारी रात खूब सिगरेट पीकर हमने अपने शरीर को गर्म रखा फिर भी हमारा शरीर अकड़ने लगा था कभी-२ टांगे अकड़ती थी तो कभी-२ बाजू अकड़ने लगते। सारी रात हमने अपने शरीर को हरकत में ही रखा हम अपनी टांगों और बाजुओं को हिलाते ही रहे। यदि किसी की टांगे बहुत ज्यादा अकड़ जाती थी तो हम दोनों हाथों से ज़ोर से टांगों को मोड़ना व खींचना पड़ता था कभी-२ टांगों की मालिश भी करनी पड़ती थी हमने यह भी बुजुर्गों से सुन रखा था कहीं बर्फ में फंस जाएं तो नीद न करें पूरे शरीर को हरकत में रखें, बर्फ के बीच में इधर-उधर न घूमें बल्कि एक गहरी जगह बनाकर बैठ जाएं और अपने शरीर को हरकत में रखें, शायद इन्हीं बातों को याद रखकर और उस पर अमल करके ही हमने सारी रात अपने आप को बचाए रखा। सुबह 8-9 बजे के करीब धूप की स्वर्णिम किरणों ने हमारा स्वागत किया। धूप की गर्मी से हम राहत महसूस करने में मग्न रहे कुछ गर्मी महसूस हुई शरीर की अकड़न भी कुछ दूर होने लगी तो हमने उठने की कोशिश की। पर यह क्या, चाहे कितनी ही शक्ति लगा कर उठने की कोशिश करते हम उठ नहीं पा रहे थे। उसी समय हमने देखा कि तीन व्यक्ति बड़ी कठिनाई से रास्ता बनाते हुए हमारी ओर बढ़ रहे हैं कौन हो सकते हैं कंधे तक वे धंस रहे थे। हर दो कदम के बाद प्रत्येक बारी-२ से आगे बढ़ कर रास्ता बनाता था हमें समझने में देर न लगी कि ये तो हमारे तीन बिछुड़े हुए मित्र थे। हमारे ईशारा करने पर वे अपनी पूरी शक्ति से लगभग दौड़ते हुए हमारे पास पहुंचे। तभी हमें उनकी याद आई थी शायद हमने अपने बचने की खुशी में भूला दिया था। हम यही समझ बैठे थे कि हमारी दुनियां दो किल्टों के बीच बैठे हुए छः जनों तक सीमित हो गई है।

हम एक दूसरे से मिलकर बहुत खुश हुए। इतनी खुशी महसूस हुई कि हमारी आंखें खुशी से भीगने लगी। एक दूसरे से छाती से छाती मिलाकर दिल खोलकर मिले। हमें सहारा देकर उन्होनें उठाया और बड़ी कठिनाई से एक-२ कदम बढ़ाकर हम सराय तक पहुंच गए। हमने अपना सारा सामान कपड़े इत्यादि वहीं पर छोड़ दिया था हमारी कुछ किताबें वहां बिखरी हुई थी उन तीन मित्रों ने उठाई और सारी किताबें फाड़-२ कर एक ढेर बनाकर जलाकर सेकने लगे। कुछ राहत महसूस हुई इतने में प्रेम लाल ने रम की एक बोतल पेश की जो कि आधी से अधिक बची हुई थी। हमने अपनी ठंड को दूर करने के लिए थोड़ी-२ बोतल के ढक्कन भर कर पीने लगे। बहनों को भी पिलाई। शरीर का बाहरी भाग आग पर सेंकने से गर्म हुआ परन्तु अन्दर की कम्पन रम पीने से शान्त हुई। अब हम थोड़ा स्वस्थ

(शेष पृष्ठ 28 पर)

चेपि की मृत्यु
लाहुली घुरे/ यर गीत

❑सतीश कुमार लोप्पा गांव वारी लाहुल

इस लोकगीत में चेपि नामक एक स्त्री की प्रसव पीड़ा से हुई अकाल मृत्यु का अत्यन्त मार्मिक चित्रण गीतकार ने किया है। गीत का लय भी बहुत ही भाव पूर्ण व हृदय स्पर्शी है। वस्तुतः यह घटना गुड्रड़ं०(गौषाल) गांव की है। किसी समय इस गांव में कुलु नामक व्यक्ति का सम्पन्न परिवार निवास करता था। कुलु की दो पत्नियां थीं जिनमें से एक का नाम था चेपि। ग्राम प्रांगण पर ही इन की दुमंज़िली हाट थी जहां वे निवास करते थे। चेपि के लिए प्रसव का यह संभवतः दूसरा अवसर था। क्योंकि गीत में छोटे बच्चे का उल्लेख तो है लेकिन एक से अधिक बच्चे होने का कोई स्पष्ट संकेत नहीं है। इस दूसरे प्रसव ने रुपसी चेपि को तड़पा-तड़पा कर मृत्यु के मुंह में धकेल दिया।

चेपि का पीहर संभवतः ठोलंग गांव में था। उन के पिता का नाम अजु था, इस का उल्लेख गीत की प्रथम पंक्ति में ही मिल जाता है।

अजू ए री दीवा कुलू ए री लाड़ी
सवे ऊपूरु दो पूरी हाटी

प्रसव का समय निकट आ चुका था, और कुलू की गर्भिणी पत्नी को पीड़ा आरम्भ हो गई। पीड़ा बढ़ती ही चली गई लेकिन प्रसव न हो पाया। चेपि के कष्ट का कोई वारापार नहीं था और वह तड़पती रही-तड़पती रही।

कुलू ए री लाड़ी पेटे दो प्राणी
पेटे दो प्राणी सूजूणे लागी
सूजूणे लागी सूजूणे ना ए

असह्य पीड़ा से त्रस्त कराहती चेपि ने अपने अपने स्वामी से आग्रह किया कि हे मेरे पति-प्रिय, किसी अच्छे वैद्य को बुला लाओ, शायद उन की दवा से मेरा उद्धार हो।

गछो ख्वादां कुलु आ वैदे री पेके

कुलू ने परिस्थिति के वैषम्य को भांप लिया था: अत: बिना समय नष्ट किए उस समय के सुप्रसिद्ध वैद्य तिरतु को अपने घर ले आए और मृत्यु से संघर्ष करती पत्नी को तसल्ली दी। वैद्य जी ने नाड़ी परीक्षण की, जिसमें अवश्यम्भावी मृत्यु का स्पष्ट संकेत था। उन्होंने अपना कर्तव्य मात्र पूरा करते हुए रोगिणी को ढांढस बंधाया और यथोचित औषध भी दिए, लेकिन उनका अन्तर्मन जानता था कि शय्या में पड़ी हुई यह चेपि शीघ्र ही चिरनिद्रा को प्राप्त कर सदा के लिए शान्त हो जाएगी। इस तथ्य से अनभिज्ञ पीड़ा से युद्ध करती चेपि वैद्य से सर्वोतम औषध के लिए निवेदन कर रही थी। पर होनी के आगे किस का बस! अच्छे से अच्छे औषध निष्फल सिद्ध हुए।

वैदा तिरातू शदी कारी आणी
वैदा तिरातू नाड़ी ना हेरी
नाड़ी अन्दूरे जीणे री ना ए
जीबे या बोलूंदा ढरुशाना दीती--
मने या बोलूंदा जीणे री ना ए
देयो मेरे वैदा बिणी मेरे ओगोती
बीणी ओगोती लगूणेरी ना ए

वैद्य की दवाओं को निष्प्रभावी देख चेपि की हताशा बढ़ने लगी और उसकी पीड़ा भी निरन्तर बढ़ती जा रही थी। अब भी उसकी जिजीविषा को यह आस बांधे हुए थी कि जीवन का टिमटिमाता दिया शायद कोई ओट पा ले और पुन: स्थिर हो जाए। वह अपने पति से फिर करुण आग्रह करती है कि किसी 'गुर' (वह तांत्रिक जिस को माध्यम बना कर देवी-देवता प्रकट होते हैं) को बुला लाएं। चेपि की पीड़ा से कराहती, थकित अधमुन्दी आंखों का असहाय आग्रह कुलु के हृदय को किस सीमा तक विदीर्ण कर गया होगा, इस का अनुमान लगा पाना क्या हमारे लिए सहज है? आह, पीड़ा की वह साक्षात् प्रतिमूर्ति!

गछो ख्वादां कुलू आ गूरे री पेके

सत्य है, मानव की मूल प्रवृतियों में बहुत कम अन्तर आता है। जब भी परिस्थितियां मनुष्य के वश से बाहर हो जाती है तो वह देवीय शक्तियों में उन का निदान खोजता है। सैकड़ों-हज़ारों वर्ष पहले भी यही होता था और आज भी वही वृति हावी है। इसमें मुझे कोई शंका नहीं। चेपि के आग्रह पर कुलु ने भी यही किया। तत्कालीन लब्धप्रतिष्ठ 'गुर' नानकु को वह अपने घर ले आए और प्रसव पीड़ा से जर-जर हुई चेपि के शीघ्र प्रसव एंव स्वास्थ्य के लिए योग्य तांत्रिक अनुष्ठान आदि के लिए निवेदन किया। 'गुर' नानकु ने सरसों के दानों को हाथ में ले कर अगना गणित लगाया और फल का निर्धारण किया। उन्होंने भी पाया कि मृत्यु निश्चित है और बाहरी तसल्ली देने भर के लिए यथोचित अनुष्ठान आदि सम्पन्न किऐ।

गूरा ए ननाकू शदी कारी आणी
गूरा ननाकू शेये गूड़ा हेरी
शेये गूड़ा हेरी जीणे री ना ए
जीबे या बोलूंदा ढरुशाना दीती
मने या बोलूंदा जीणें री ना ए

'गुर' के तांत्रिक कृत्यों से भी चेपि की स्थिति को कोई लाभ नहीं पहुंच सका। जीवन की प्रत्येक रेखा उस की आंखों से ओझल हो गई और रह गई सिर्फ मृत्यु की निरन्तर गहराती कालिमा। जीवन की आस अब वह बिल्कुल छोड़ चुकी थी और अपने माता-पिता से अन्तिम भेंट करना चाहती थी।

गछो ख्वांदा कुलू आ मेणी माई शादे

अयो मेरे माईं मऊं ए मरु णेरी ध्याड़ी

गछो ख्वांदां कुलु आ मेणी बाबू शादे

अयो मेरे बाबू मऊं ए मरुणेरी ध्याड़ी

बेटी का संवाद पाते ही माता-पिता दौड़े चले आए और कुशल-क्षेम पूछने लगे। चेपि रुद्ध कण्ठ से बोली, हे मेरी मां! हे मेरे बापू! मेरा अन्त समय आ गया है। गला भर आया और अश्रु की धारा बह निकली। फिर पलट कर सौतन से बोली, हे मेरी सौतन! मेरी मृत्यु मेरे पास खड़ी है मेरा बालक अभी बहुत छोटा है, उसको किस के आसरे छोड़ जाउं! री बहना, उसे तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ, अब से तुम्हीं उसकी माँ हो, मेरा यह अन्तिम निवेदन भूल नहीं जाना। इतना कह कर एक उच्छवास छोड़ी और सदा के लिए मौन हो गई।

अयो मेरे सोखूणी मउं ए मरूणेरी ध्याड़ी

बालाका याणा कासे री हाथे

अयो मेरे सोखूणी बालाका तेन्ढूणें हाथे

चेपि का प्रसव उसकी पीड़ा दुनियां के लिए एक निराली घटना थी। ऐसी हृदय विदारक घटना लोगों ने न देखी न सुनी थी। चिड़ी और चकोरी भी प्रसव करती हैं, अण्डे देती हैं, यह तो एक नितान्त सामान्य क्रिया है, पर चेपि का प्रसव! उफ, यह कैसी विडम्बना थी।

लेकिन चेपि का विकसित पुष्प सा सौन्दर्य सदा अक्षुण्ण बना रहा। मृत्यु के कठोर हाथ भी उसे विलगित नहीं कर सके। भीषण प्रसव पीड़ा से पीताभ हुआ उसका मुख जैसे किसी खिले हुए पीतवर्ण 'क्वांटि' फूल के यौवन से होड़ ले रहा था!

चेपि ए री सुजूणा देशे री नोखी

चीड़ी चाकूरी सूजूणे लागी-

चेपि ए री सूजूणा देशे री नोखी

चेपि ए री सुरुता क्वांटीरे फूले!

{■ गीत का प्राप्ति स्रोत-- श्री कुन्ज़ंग गांव वारी}

(पृष्ठ २० का शेष भाग)

13 मार्च, 1948 को सुबह ठीक 11 बजे एक बहुत बड़ा जनसमूह झण्डा लहराने की रस्म को देखने के लिए इकट्ठा हुआ। जम्मू-काश्मीर रियासती फौज का प्लाटून और बटालियन 2 गोरखा की यह जाबांज़ टुकड़ी झण्डे के आगे सावधान अवस्था में खड़ी थी। लामाओं ने भगवान की प्रार्थना शुरु की और जब वह पूजा के बाद्य बजा रहे थे तो इन्होंने युनियन जैक को शस्त्र भेंट की और इसके बाद इसे पोल से नीचे उतारा। इसी प्रकार पोल पर तिरंगा झण्डा लहराया गया और इसे शस्त्र भेंट किया गया। इसके बाद मेज़र पृथी चन्द ठाकुर ने जनसमूह को सम्बोधित किया। " हमें यहां पर लद्दाख की सुरक्षा के लिए, आप लोगों की मदद करने भेजा गया है। हम तुम्हे ट्रेनिंग देंगें और उसके बाद सुरक्षा का इन्तज़ाम होगा। आप लोगों को पता है कि वादी में सब दर्रे बन्द हैं और इस प्रकार बाहरी सहायता मिलना असम्भव है। तब तक हमें लद्दाख को किसी भी कीमत पर बचाना होगा। आप लोगों की सहायता के बिना कुछ भी नहीं हो सकता इसलिए मेरी आपसे विनती है कि युवा जवानों की भर्ती व ट्रेनिंग के लिए पूरा सहयोग दें। सोनम नोरबू लेह के पास हवाई अड्डा बनाने के लिए आए हैं ताकि हमें सप्लाई व बाहरी सहायता मिल सके। मेरी आपसे विनती है कि इसे बनाने में अपना सहयोग दें।

आपको पता है कि पाकिस्तान में हज़ारों हिन्दू व सिख बेदर्दी से कत्ल कर दिए गए हैं। औरतों पर बलात्कार, मन्दिर व गुरुद्वारे जला कर नष्ट कर दिए गए हैं। कश्मीर वादी में इन्होंने अपने समुदाय के लोगों को भी नहीं छोड़ा है। अब अगर, आप लोगों को अपनी सांस्कृतिक व धार्मिक सम्पदाओं को, और औरतों का मान बचाना है तो आप लोगो को आगे आना पड़ेगा। युद्ध भूमि से भाग कर जान बचाने से बेहतर है कि अपनी मातृभूमि की रक्षा करते हुए शहीद होना। आपके पूर्वजो ने मंगोल, तातार और दूसरे हमलावरों से अनेक युद्ध किए हैं। वे वीर पुरुष थे। वही रक्त तुम्हारी धमनियों में बह रहा है। थोड़ी सी मेहनत और ट्रेनिंग के बाद तुममें भी वही आत्मविश्वास व शत्रु से मुकाबला करने की क्षमता आएगी। एक बात जिसे में महत्व देता हूं वह है "सभी समुदाय आपस में सदभाव बनाए रखें। "हर वह व्यक्ति जो शत्रुओं की देखी अनदेखी मदद करेगा या पाकिस्तानियों से सद्भाव रखेगा उससे सख्ती से निपटा जाऐगा। ''

इस सम्बोन्धन के बाद उन्होने उपस्थित सभी लोगों को उनके स्वागत और इस रस्म में शामिल होने के लिए धन्यवाद दिया। तदन्तर स्थानीय व्यापारीयों द्वारा चाय और बिस्कुट के साथ सभी लोगों का सत्कार किया गया। इस प्रकार X कॉलम के अभियान का पहला चरण सम्पन्न होता है।

(अगले अंक में आप प्लानिंग और ट्रेनिंग के बारे में पढ़ेंगे।)

लाहौल-स्पिति में संयुक्त-परिवार प्रणाली में विघटन

■राहुल ठाकुर, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़)

बर्फ की श्वेत चादर से ढकी पीर-पांचाल की गगन-चुम्बी चोटियां, पहाड़ी के चरणों को स्पर्श करती हुई चिनाव नदी, कलकल करते नाले, हरे भरे दूर तक फैले सीढ़ी नुमा खेत एंव इस प्राकृतिक व्यूह-रचना के मध्य निवास करती यहां की जन-जातीय जनता और उनका खून-पसीने को एक कर देने वाला कठिन परिश्रम, यही कुछ हिमालय की गोद में स्थित ज़िला लाहौल-स्पिति का संक्षिप्त सा परिचय है।

जैसा कि सर्वविदित है कि ज़िला लाहौल-स्पिति एक सीमांत ज़िला है और यहां की भौगोलिक ही नहीं, अपितु सामाजिक, आर्थिक एंव धार्मिक परिस्थितियां भी दूसरे ज़िलों से सर्वथा भिन्न है। यहां का जीवन नितान्त भिन्न एवं कठिन हैं। कठोर परिश्रम, खून-पसीने की कमाई, इसी में इन की रोज़ी रोटी निर्भर करती है। दूर ऊंची पहाड़ियों से जल खेतों में पहुंचा कर, रात-दिन फसलों की देखभाल करने व कठोर परिश्रम के पश्चात ही सोने जैसे गेहूं, मटर, आलू, व होप्स आदि की फसल नसीब होती है। पूरी घाटी का जन-जीवन इतना ज़टिल है कि बाहर का आदमी यहां के लोगों की मेहनत को देख कर दाँतो तले उंगली दबाए बिना नहीं रह पाता। यही कारण है कि समाज के हर क्षेत्र में लोग हमेशा कंधे से कंधा मिलाकर चलते आए हैं। विशेषकर संयुक्त-परिवार में रहकर यहां के लोग एक-दूसरे के सुख-दु:ख के साथी रहे हैं। प्यार, सहयोग, आपसी ताल-मेल आदि वे विशेषताएं हैं, जिनकी बदौलत इस ज़िले में संयुक्त-परिवार प्रणाली सदियों से कायम रहती आई है।

परन्तु आज परिस्थितियों में नितान्त अनपेक्षित परिर्वतन आते जा रहे हैं। भौगोलिक परिस्थितियों की प्रतिकूलता के बावजूद आज यहां का पारिवारिक जीवन दिन-ब-दिन विघटित होता जा रहा है। घाटी निवासी सदियों पुरानी परम्परा को तिलांजलि देते जा रहे हैं। वे यह भूलते जा रहे हैं कि एकता में बल होता है। यह स्वाभाविक है कि बदलते सामाजिक मूल्यों के कारण उन्हें संयुक्त-परिवार प्रणाली में रहना अटपटा सा महसूस होने लगा है। वे इस तथ्य से भी पूर्णत: अनभिज्ञ होते जा रहे हैं कि एक और एक ग्यारह होते हैं।

इसके विपरीत सभी प्रकार की सामाजिक एकता को ताक पर रख कर परिवार विघटित होते जा रहे हैं। भाई-२ के मध्य आपसी मन-मुटाव दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। समय आने पर भाईयों का एक छत के नीचे गुज़र-बसर करना मानो एक घुटन एवं असहनीय पीड़ा समझा जा रहा है। लगभग हर महीने कानो-कान खबर मिल जाती है कि फलां घर के भाईयों में झगड़ा हुआ, ज़मीन व बाग-बगीचे का बंटवारा, फलां का अलग घर बनाकर सिर्फ अपने बीवी-बच्चों समेत जीवन यापन करना आदि-आदि। यह चीज़े लाहौल-स्पिति के संस्कृति एंव संस्कारों पर प्रश्न बनकर उभर रहे हैं। आपसी मन-मुटाव के कारण ज़मीन-जायदाद का बंटवारा होगा ही। जितने हिस्सेदार होंगे, खेत के भी उतने ही छोटे-२ टुकड़े होगें। फलस्वरुप फसल की पैदावार पहले की अपेक्षा घटती चली जाएगी। यही नहीं, आए दिन कई प्रकार के लड़ाई झगड़े होते रहते हैं। माता-पिता के रहते भाईयों की यह आपसी लड़ाई व मन-मुटाव स्वयं माता-पिता के लिए भी दु:खद एंव असहनीय बात बन जाती है।

राष्ट्रीय एंव प्रादेशिक परिप्रेक्ष्य में संयुक्त-परिवार प्रणाली के बारे कुछ बयान कर पाना मुश्किल है, क्योंकि इस प्रणाली में जहां कई गुण है, वहां यह दोषो से भी मुक्त नहीं है। परन्तु ज़िला लाहौल-स्पिति के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि इस प्रणाली का कायम रहना ही श्रेयस्कर है। क्योंकि जैसा पहले भी ज़िक्र किया जा चुका है कि संम्भवत: पूरे देश में सिर्फ यही ऐसा भू-खण्ड होगा, जिस की भौगोलिक सामाजिक एंव आर्थिक परिस्थितियां नितान्त भिन्न हैं। जहां तपती गर्मी और कड़ाके की ठण्ड में जीवन यापन करने का प्रश्न उठता है, तो कल्पना ही की जा सकती है कि अकेला आदमी किस तरह इन सारी प्राकृतिक विपदाओं से जूझ पाएगा। साल में छ: महीने ही तो काम का मौसम होता है। यदि इसी निश्चित अवधि में सारा काम नहीं निपटाया गया तो फसल नष्ट हो जाएगी।

जहां संयुक्त परिवार प्रणाली में विघटन के कारणों की बात आती है तो यह कहना उचित नहीं होगा कि इसके पीछे सिर्फ ज़मीन-ज़ायदाद के झगड़े हैं। गूढ़ विचार के पश्चात कई तथ्य सामने आऐ हैं। सर्वप्रथम स्वार्थी मानसिकता इस विघटन का मुख्य कारण है। घर का हर सदस्य व्यक्तिगत सम्पत्ति चाहता है ताकि भविष्य में अन्य गृह सदस्यों द्वारा उस का शोषण न हो। सरकारी नौकरियों एंव व्यवसायों में लगे परिवार सदस्य की तुलना अगर घर बैठे कृषि में लगे सदस्यो से की जाती है तो द्वितीय वर्ग अपने को

सुखीमहसूस नहीं करते। फलस्वरुप वे पारिवारिक विघटन को ही सार्थक समझने लगते है। पड़ौसी ज़िला कुल्लू में भी जमीन, मकान खरीदने व बनाने की व्यक्तिगत लालसा व होड़ ने भी संयुक्त परिवार प्रणाली को विघटित करने पर मजबूर किया है। एक अन्य कारण है सरकार की सत्य घोषणा "छोटा परिवार-सुख का आधार" का प्रभाव लाहौल-स्पिति ज़िले के लोगों के मन तक पहुंचना।

आज ज़िले की आर्थिक स्थिति पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बेहतर है। अपने ज़िले से उठकर दूसरे जिलों में घाटी निवासी अपनी जायदाद बढ़ाते जा रहे हैं, अपनी पूंजी का विनियोग वास्तविक अर्थो में विशेष क्षेत्रों में कर रहे हैं। यह सब सुखद भविष्य का सूचक है, कि कुछ लोग लाहौल में रहें और कुछ बाहर। इस तरह सब को समान रुप से प्रगति करने का मौका मिला है और भविष्य में मिलता रहेगा। परन्तु यहां इन हालात में भी पारिवारिक विघटन की स्थिति नहीं आनी चाहिए। अलग-२ जगहों पर रहते हुए भी सब के विचार एक रहने चाहिए, सब की सम्पत्ति सांझी होनी चाहिए तभी सच्चे अर्थो में उन्नति हो पाएगी।

अन्ततः विषय का निष्कर्ष इन्हीं शब्दों में निकालना न्यायोचित होगा कि संयुक्त परिवार प्रणाली ही यहां की भौगोलिक एंव सामाजिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है और श्रेष्ठ है। इस प्रणाली को शिथिल करने की बजाय इसे नया रुप देना होगा, इसे सार्थक एंव ठोस बनाना होगा, तभी हर परिवार खुशहाल होगा और सुखी होगा।

(पृष्ठ 24 का शेष)

महसूस करने लगे थे।

फिर हम नीचे बैठ गए थे। हमने पूरी सराय का निरीक्षण किया। दो किल्टे वहां मौजूद थे। आग रात की जलाई हुई दिखाई दी। कुछ ऊनी पट्टियां बिछी हुई थी। हमारे पूछने पर हमारे तीन मित्रों ने पिछली रात की घटना इस तरह सुनाई। वे तीनों अन्धरे में एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले नीचे उतरते चले जा रहे थे कि अचानक आसमानी बिजली चमकने से चारों ओर प्रकाश होने से उन्होंने देखा कि वे तीनों 'हरचा' के पहाड़ के सिरे पर थे एक अगला कदम उनकी ईहलीला खत्म कर सकता था। एक दम उन्होंने अपना कदम पीछे हटाया और ऊपर की ओर दौड़ने लगे जहां उन्होंने सराय देखी थी। बड़ी आसानी से वे थोड़ी देर में ही सराय पर पहुच गए थे। सराय में पहुंच कर दो किल्टे मिले शायद वे उन दो व्यक्तियों के थे जो कि उस दिन हमारे से आगे-२ चलकर यहां तक पहुंचे थे किल्टे भारी होने के कारण वे यहां तक ही उन्हे उठा सके थे। और वे खाली हाथ ही खोकसर पहुंचे थे। किल्टे हमारे मित्रों के लिए वरदान साबित हुए। उन्हें गर्म कपड़े मिले, अपने भीगे हुए कपड़ों को बदल कर इन कपड़ों को लगाया। रम की बोतल मिली जिसे पीकर अपने शरीर को इन्होंने गर्म रखा। गरी, छुहारे इत्यादि खाने को मिले। ढूँढने पर कुछ लकड़ियां भी सराय के अन्दर मिल गई। आग जलाकर इन्होंने अपने आप को गर्म रखा वे तो बहुत मज़ें में रहे।

लगभग 11-12 बजे तक हम काफी स्वस्थ हो चुके थे शरीर में कमज़ोरी ज़रुर थी, अब आगे उतराई थी। हम धीरे-२ एक-एक कदम फूंक-२ कर उतरने लगे थे ओर सांय 7 बजे हम खोकसर पहुंच गये। खोकसर पहुंच कर हमें भूख लगने लगी। गांव में पहुंचकर हमने गांव वालों से रोटी मांगी, रात काटने के लिए कमरा मांगा, जो हमें मिले। गांव में ही हमें वे दोनों व्यक्ति भी मिल गए थे। उन्होंने हमारे जीवित बचकर खोकसर पहुँचने की खुशी में लुगड़ी से शागुण किया। हम सभी ने कुछ-न-कुछ कपड़े उन लोगों के लगाए हुए थे। इस गुस्ताखी के लिए हमने उनसे क्षमा मांगी। उन्होंने खुशी ज़ाहिर की कि उनके कपड़े सामान इत्यादि ने हमें अपनी जान बचाने में सहयोग दिया। 7 अप्रैल की सुबह हम खोकसर से अपने घर की ओर रवाना हो रहे थे। वे दोनों व्यक्ति रोहतांग दर्रे की ओर अपने किल्टे तथा सामान लेने चल पड़े थे।

ग़ज़ल

अच्छों में जीना आसां है
बुरों में भी चैन से जी के देख।
खुशियों का साथ सुन्दर है बहुत
ग़मों से नाता ज़रा जोड़के देख।
फूलों की सेज सुखद है
कांटों में सहज तू चल के देख।
ये चांदनी क्या खूब है
अमावस को रोशनी बिखरा के देख।
महफिल-ए-तरन्नुम क्या बात है
उजड़े बाग में मधुरबशीं बजा के देख

❐ सतीश

सुरजणी मेला योर

❑ प्रेम सिंह 'शौंडा'

आज के तीज-त्यौहार, पर्व, उत्सव तथा मेले मानव के बीते कल की कहानियां कहते हैं। जिनकी पृष्टभूमि में कोई न कोई सुखद या दु:खद, प्रिय या अप्रिय एंव सफल या असफल मार्मिक घटना रहती है। जिसे चिर-स्मरणीय बनाये रखने के लिए मनुष्य पर्व, उत्सव और मेले आदि को जन्म देता है। पर विशेषकर सभी मेलों के बारे में हमेशा यही परम्परा या धारणा नहीं रहती है। मानव प्रकृति से ही विनोद प्रिय प्राणी है। प्राय: जिन्दगी की कठोरता से निजात पाने के लिए; चाहे कुछ क्षणों तक ही क्यों न हो;वह फुरसत के क्षणों की तलाश करता है और एक ऐसी शून्य बिन्दू पर पहुंचना चाहता है जहां सब कुछ भूलकर केवल-केवल मात्र आनन्द (मानसिक-आनन्द) से सरोबार हो। इस उपक्रम में मूर्त या अमूर्त कोई न कोई सहारा लेकर मनो-विनोद करता है। यही सहारा धीरे-धीरे एक के बाद दो, तीन का हो कर व्यापक जन-मनोरञ्जन का रुप लेकर मेला विकसित होता है।

कुछ वर्षों पहले तक लाहौल का जन-जीवन मेले और तीज त्यौहारों में गुज़रता था। देश की आज़ादी के बाद युग की नई रोशनी तथा विकास की क्रांति ने मेलों को छितरा दिया और तीज त्यौहारों और उत्सवों की भव्यता क्षीण कर दी। सर्दियों में लाहौल में इन्हें मनाने के लिए बहुत समय मिल जाता है। विशेष कर तीज, त्यौहार तथा थोड़े से मेले जैसे सुरजणियों का "योर" मेला शीतकालीन हैं। सारी लाहौल की वादी में छ: गांवों में छोटे बड़े तौर पर "योर" मेला आयोजित हुआ करता था। अब यह सिमटते-सिमटते कुछ गांवों में संक्षिप्त औपचारिकता (थित्तिया) मात्र में मनाया जाता है। "चन्द्रताल" पत्रिका में "योर एक पर्व जोवरंग का" शीर्षक से पढ़ने को मिला। प्रिय सतीश चन्द्र 'वुग्गी' ने स्पष्टता और सिलसिलेवार परन्तु अतिसंक्षिप्त में योर का वर्णन किया है। इस लिए उस का इतना लिखना भी बहुत है। आज की स्थिति यह है कि आज से पचास साल पहले की पीढ़ी के

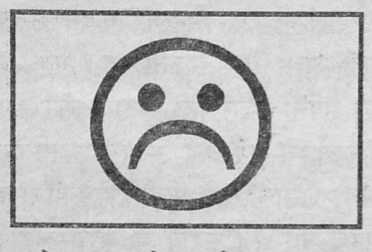

लोगो; जो इस आयोजन से प्रत्यक्षतया जुड़ थे तथा तत्कालीन प्रत्यक्षदर्शियों के लिए भी यह एक अतीत की घटना हो गया है। नई पीढ़ी का तो कहना ही क्या! उस ने सम्भवतया इस मेले का नाम 'योर' पहली वार सुना होगा। ऐसी स्थिति में इस की मिटती विखरती निशानियों को समेटने, सांगेपांग स्वरुप तथा मनाने की विधियों को दर्शाने तथा भविष्य के लिए प्रामाणिक साक्ष्य-पत्र को सम्बल देने के लिए उत्साहित हो कर एक बार पुन: "पुनाह योर" शांशा से आरम्भ कर स्पष्ट और सविस्तार दिखाने का प्रयास कर रहा हूं।

छ: गांवों में से घोषाल और शांशा में यह मेला बहुत पहले ही से मनाया नहीं जाता है। शेष जोवरंग, त्रिलोकनाथ, मडग्रां और कारदङ्ग में मात्र एक या दो दिन औपचारिकता निभाने के लिए अब भी प्रति वर्ष माघ मास की पूर्णिमा के दिन आयोजन किया जाता है। केवल कारदङ्ग गांव में इस मेले के लिए रात्रि का समय निश्चित है। इस प्रकार योर मनाने की विधियों में थोड़ा अन्तर एक दूसरे गांव से तो है; परन्तु स्वरुप से सभी जगह के योर में समानता पाई जाती है। इस की जन्म स्थली मेरे विचार से घोषाल गांव ही है। यह पूरी पट्टन घाटी की सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। क्योंकि यह राणाओं का गांव था। इसलिए शासन के केन्द्र में उक्त गतिविधियों का उद्भव, विकास और प्रसार होना स्वभाविक ही है। सुना जाता है शांशा वाले इस मेले के कर्तव-कौतुक देखने तथा इस प्रकार के कार्य-क्रम को अपने गांव में मनाने के इरादे से जिस दिन यहां आये उस दिन इसमें भाग लेने वाले सभी पात्रों ने मूक रह कर आङ्गिक चेष्टाओं से सम्पूर्ण कार्यक्रम का अभिनय किया। इसी लिए शांशा के सभी आठ दिनों के योर के पूर्वाध में हास-परिहास, आमोद-प्रमोद, हंसी-मज़ाक कम और औपचारिकतायें अधिक गम्भीरता से अपनाई गई थी।

इस मेले का मूल आधार क्या था! इस बारे में आज तक कर्ण-परम्परा से भी कोई जनश्रुति नहीं है। सम्भव है भविष्य में कोई अनुसन्धित्सु इस की पृष्टभूमि को प्रामाणिक तौर पर उजागर कर सार्वजनिक बना दे। परन्तु इसके आद्योपान्त क्रिया कलापों का सूक्ष्म में अध्ययन करें तो शुद्ध जन-मनोरञ्जन का आयोजन लगता है। श्री ठाकुर दास घोषाल वाले; जो स्वंय इस कार्य क्रम में मुख्य पात्र के तौर पर भाग लिया करता था; का कहना है कि अधिक खेल-तमाशे, कर्तव और अनेक प्रकार की आंगिक भंगिमाओं से जब जब जन समूह को हर्षाया जाता था; तब-तब के योर को बहुत अच्छा कहा जाता था। इसके अतिरिक्त शांशा के योर किसी न किसी व्यक्ति और व्यक्तिसमूह के नाम पर अलग-अलग

नाम से है। क्योंकि जो कोई उक्त आयोजन का व्यय वहन करता था उसके नाम से एकदिन का तमाशा होता था। इसलिए मनोरञ्जन के सिवा और कारण मेला मनाने का दिखाई नहीं देता। इन खेलों के दौरान मैं स्वंय लोगों को यह कहते सुनता था कि " मोहरा रे मोज़ तो रे आ '' मुखोटा वाले खूब हरकत के साथ खेल रहे हैं क्या? "मोहरा रे ह्योज़ तोरे आ'' अर्थात मुखोट्टा वाले खेल खेल रहें हैं क्या? इस तरह खेल अर्थक क्रिया "ह्योज़ी'' या "योज़ी'' (खेलना) से योर का नाम पड़ गया होगा। नामकरण की दूसरी और तीसरी सम्भावना पर्याप्त युक्ति संगत एंव उदाहरण की समानता के निकट पहुंचाती है। जिसके नाम पर योर खेला जाता था उस दिन की तरफ से देवी देवताओं (सद्-मा) को योरा अर्पित किया जाता था। कुँ: या कुस (फागली त्यौहार) त्यौहार के बाद हरिन्योर मेला लगता था। उक्त पर्व के समय पर तो हर कोई व्यक्तिगत तौर पर कमरे के अन्दर ही तैयार किये हुए गेंहुं के पीले रंग के तीन से छः इन्च तक लम्बे पौधों को अपने अपने इष्ट देवता और सामान्यतया सभी देवी देवताओं को फूल के रुप में चढ़ाते थे। अब भी वैसा ही करते हैं। परन्तु सामूहिक गांव वाले योर के समय ही श्रद्धा और भक्ति सहित शुर (देवदार की पत्तियां) योरा उन्हें समर्पित करते थे। यह एक मुख्य और मांगलिक कार्य होता था। गेहुं के इस पौधे को यौरा कहते हैं। सम्भवतया योरा से ही इस मेले का नाम योर पड़ गया हो। इसी प्रकार चम्बा में लोग अच्छी और भरपूर फसल की खुशी में रावी नदी के पवित्र जल में सामूहिक रुप में अपने-२ इष्ट के लिए मक्की के पौधे "मिंजर'' को प्रवाहित करते हैं। इसी पौधा "मिंजर'' के नाम से मिंजर मेला हर वर्ष मनाया जाता है। योर नामकरण की सभी सम्भावनाओं को उदाहरण सहित निर्णय के लिए सुधी पाठकों के सन्मुख खुली छोड़ दी गई है। सम्भवतया भविष्य में चिन्तन शील लोग संगोष्ठी की आवश्यकता का अनुभव करेगें।

शांशा गांव में योर की तैयारी पांच दिनों पूर्व गुन्त्रै फागली (कुस) का एक दिन; से कुत्पकची अर्थात अनाज तोलने के काम से होती थी। यह अनाज कोई अपने या अपने पूर्वजों के नाम योर कराने के लिए देता था। यह एक रस्म "कुत्कची'' था। मेले में भाग लेने वालों, गांव वासियों तथा बाहर से आए अतिथियों के लिए पेय पदार्थ इसी अनाज से तैयार किया जाता था। तथा भोजन व्यवस्था भी इसी पर निर्भर रहती थी। फागली के सिल वाले दिन के बाद लाहौल की पट्टन घाटी में दूसरे दिन (यानि शुक्ल पक्ष की द्वितीय) को पुनाह नाम दिया गया है। इसी नाम से पहला योर "पुनाह-योर'' होता था। यह केवल औपचारिकता मात्र एक घण्टे का कार्य क्रम होता था। सुना जाता हैकि पहले कभी इन्हीं मेले के दिनों में भारी हिमपात हुआ था। तो भी अपनी परम्परा को बनाए रखने के लिए सभी भाग लेने वाले उपरली और निचली शांशा गांव के बीच स्थान "फैज़ाली'' में एकत्रित हुए तो ढलान का ओर बहुत वेग से आती बर्फ के ढेर यानि "हिमोघ'' (री) से तीस में से बीस आदमी दब कर मर गए थे। शेष दस में से दो मोहरा (मोखोटा वाले) सात सुरजणी ओर एक वाद्य वादक बच गये थे। ऐसा लगता है कि कभी पहले पुनाह-योर के पश्चात निरन्तर अन्य योर सात दिनों में हुआ करते थे। लेकिन उस दुःखद दुर्घटना के बाद सारा कार्यक्रम स्थगित किया गया। बाद के वर्षों में उस दिन केवल दस ही व्यक्ति भाग लेते थे। शेष योर तेहरा (13) दिनों के पश्चात आरम्भ होते थे।

गांव के देवता "नौनाथ जी'' और "वीरनाथ जी'' दोनों का स्थान (थान) रवालिंग नामक गांव में है। नौनाथ जी कभी क्षेत्रीय देवता के रुप में प्रसिद्ध हुए। वीरनाथ जी अपने मन्दिर (डेहरा) से कभी बाहर निकलते नहीं। शुक्ल पक्ष की चौदवीं को गांव के सारे लोग फागली के उपलक्ष्य में देवता को अभिवादन (ठेल) करने के लिए गाजे बाजों के साथ उक्त गांव जाते थे। गांव के बाकी लोग "वसागोज़ी'' के नाम पर प्रत्येक घर में आटा गून्थ कर रख देते थे। दूसरे दिन सवेरे ही गांव के नव-युवक उपरले शांशा के उत्तर की ओर "हषाँ'' नामक स्थान पर इकट्ठे होकर उस से पूरी पका कर खाते थे तथा गांव में जिस पर भी उन की नज़र पड़ती थी वे पूरी आज़ादी के साथ उस पर फब्तियां कसते थे। स्त्रियों की बात तो दूर, पुरुष भी इन की अश्लील सीमा के अन्तर्गत आने में कतराते थे। राह चलते अपरिचत कई बार झगड़ने के लिए उतारु हो जाते थे। स्थिति की जानकारी मिलने पर स्वंय ही हंस कर अपने राह चल जाते थे। सूर्योदय होन पर ये सभी नौजवान निचले गांव के छोर पर जाकर एक को "वसआ'' (हंसाने वाला) बनाते थे। बस (हंसी क्रिया) से वसआ (हंसाने वाला) बनाता है। तदनुसार पंक्ति-वद्ध प्रथम वसआ, एक ढोलक वादक उस के पश्चात नव-युवक जलूस की शक्ल में गांव के बीच से निकलते थे। ज्यों ही दूर से उन के आने की सूचक ढोलक की आवाज़ सुनाई देती थी, त्यों ही घरों से बाहर निकल निकल कर लोग हंसते बोलते हुए रास्ते के साथ लगने वाले घरों की छतों पर चढ़ जाते थे। आबाल वृद्ध, पुरुष-स्त्रियां सभी अपने हाथों में कूड़ा कर्कट, राख, गन्दे गन्दे और फटे बेकार के कपड़ों तथा घिसे-टूटे घास के जूतों (पूलों) को लेकर तैयार रहते थे। जिन जिन घरों के आगे से इन की शोभा यात्रा निकलती थी, उन-उन की छतों से नौजवानों पर गन्दगी की वर्षा होती थी। एक तरफ धिक्कारते हुए शब्द

तथा दूसरी तरफ सिर, मुंह ढांपते हुए युवाजन की दुर्दशा देखने योग्य होती थी। यह उन की फब्तियाँ कसने की गलतियों की सज़ा सी होती थी। जलूस गांव के पूर्व में "शड.गढ़" नाला में समाप्त होता था। जहां वे अपने ऊपर पड़े राख और धूल आदि को नाले के पानी पर झाड़ देते थे। मानों भविष्य में अपनी इन हरकतों को न करने का प्रायश्चित हो अथवा अपने अन्दर पड़े गन्दे भाव को इधर उधर न फैंक कर जल प्रवाहित कर दिया हो। यह संक्षिप्त सा, अपने आप में पूर्ण, उत्सुकताजन्य और सभी के हर्षातिरेक करने वाला कार्यक्रम पुनाह योर के बाद के योर का एक भाग होता था। इसी छोटे से कार्यक्रम के साथ ही माघी पूर्णिमा के दिन प्रात: लगभग दस बजे पहला योर "सयोर" अर्थात सादू योर (देवता का योर) आरम्भ हो जाता था। पुनाह-योर पर्याप्त अन्तराल में पीछे छूट जाने पर सयोर ही पहला माना जाने लगा। मेले के कार्यक्रम उपस्थित करने वालों में तीन मुखोटा पहने पात्र हुआ करते थे। (1) ठगुर मोहरा (ठाकुर मोहरा) (2) मेचमी मोहरा (स्त्री मोहरा) और चणमोहरा। इन मुखोटों पर नामकरण के अनुरुप रंग और आकृति देकर चेहरा उभारा जाता था। सर्व प्रथम मेचमी मोहरा अपने घर देवी देवताओं (सद्-मा०) को शुर यौरा श्रद्धा के साथ अर्पित करता था। फिर अपने आसन पर बैठने पर गृहिणी सात बार शागुणा (मगंल कार्य) से सम्मानित कर प्रस्थान कराती थी। घर से निकलने के बाद किसी के पूछने पर भी बिना बोले मुखोट्टा रखे "छमाओ" के घर जाता था और उस घर का मुखिया भी सजग होकर सात शागुण से सत्कार करता था। पहला शागुण सम्पन्न होने पर, वह मौन को तोड़ता था। मुखोट्टों को ले जाने का काम करने पर मेचमी मोहरा को उस समय मोर चुचा भी कहते थे। मोर चुचा के आने की खबर तत्काल ही गांव के सभी घरों में पहुच जाती थी। घर से भाग लेने वाला धुणकड़छ (धुंए की कड़छी) में देवदार की पत्तियां डालकर यौर सञ्ज्वा (दीपक) जला कर कुलज देव या देवी अथवा कोई इष्ट हो, का पूजन कर आसन पर बैठता था। उधर मोर चुचा के चलने के तत्काल एक वाद्य-वादक छ: इन्च व्यास वाली और डेढ़ हाथ लम्बी डोमणी नाम की ढोलकी पर थप्पी लगाता हुआ सभी को एकत्रित होने के स्थान फैंज़ाली में पहुंचता था। थप्पी की आवाज़ सुनकर तथा ये संख्या में इक्कीस होते थे।

एक बार ही शागुण प्राप्त कर घर घर से वे भाग लेने वाले उक्त स्थान पहुंचते थे। जिन्हें सुरजणी कहे जाते है। ये संख्या में इक्कीस होते थे। इन्हीं में से एक ओयाह जो सारे कार्यक्रम का संचालन और निर्देशक करता था और एक पंक्ति के अन्तिम किनारे पर रहने वाला लड्तेप्चा कहलाये जाते थे। वादक-वृन्द में डोमणी, वोमणी, पाऊन बजाने वाले और बांसुरी बजाने वाले दो बैंजारु की पूरी भागीदारी होती थी। ठगुर मोहरा और चणमोहार के पश्चात तीन मुखोट्टों को अपनी गाछी के बीच पोटली बनाकर, ले जाता हुआ मेचमी मोहरा भी वहां पहुंचता था, जहां से सभी सज कर मुख्य स्थल की ओर चलते थे। सजने और सजाने में कुछ समय लगता था। ओयाह, लडतेप्चा और डन्नशी क्रमश: ठगुर मोहरा, मेचमी मोहरा तथा चणमोहरा को मुखोट्टे पहनाते थे। उन्नाशी एक प्रकार का चौकीदार होता था। वह केवल श्यामसित चितकवरी खेस को बाएं कन्धें के ऊपर से होकर दाहिने आंख के नीचे पहनता था। मोहरों के सिर पर थैला नुमा टोपी, जो इकट्ठा करने पर चक्राकार की होती है, पहनी जाती थी। सुरजणियों के पहरावे में विशेष आकर्षण होता था। सिर पर मेमने (मेषशावक) की खाल इस तरह तैयार की जाती थी कि पहनने पर सीधी खड़ी रहे, इस शंकु आकार टोपी को 'चोग' कहते थे। इसके साथ सिला सफेद कपड़ा मुंह ढाँपने के लिए ठोढ़ी तक होता था । किनारे पर दाढ़ी के रुप में बकरी की पूंछ लटका दी जाती थी। कपड़े को मुंह और आंखों के स्थान पर उसी प्रकार काट कर कटे किनारों को लाल रंग के कपड़े की किनारी से सिला कर पूरी मुखाकृति उभार दी जाती थी। नाक पर अतिरिक्त लाल रंग का कपड़ा उसके अनुरुप चिपका होता था। सुरजणियों के ही गले में मूंगे, फिरोजे और कपूर पिरोई हुई "कैचा" माला छाती पर लटकी रहती थी। शरीर में मुख्य परिधान सभी पात्र लाहुली चोड़ू और लाल गाच्छी (कमर-बन्ध) पहने थे। गाच्छी के साथ सफेद और काले धागों से हत्थबुलाई गई डेढ़ इन्च चौड़ी और दस या बारह फुट लम्बी "त्राणी" केवल सुरजहणयों की वेश-भूषा में शामिल थी। लगाने में गाच्छी और त्राणी के किनारे बराबर दाहिनी टांग के रान पर घुट्टनों तक लटके हुए होते थे। त्राणी का दूसरा किनारा दोनो कन्धों पर इस प्रकार बांधा जाता था कि जिस से छाती के बीचों बीच क्रास बन जाता था और वहां पर योर के उत्तरार्ध में चोग उतार कर पहने जानी वाली गोलाकार (टोपी रखी होती थी। ऐसा लगता था कि कवच पहनकर कोई रण बांकुरा हो। सात फुट लम्बा छ: इंच चौड़ा सफेद कपड़ा जिस का एक सिरा एक हाथ की अनामिका अंगुली से बांध कर बाजू के साथ कुहनी के स्थान पर पिन से चौड़े से बींध कर कन्धें के ऊपर त्राणी के नीचे इसी प्रकार दूसरी भुजा के साथ-साथ अनामिका से दूसरा सिरा बंधा होता था, को "डल" (कवर्ग का अन्तिम

ङ अक्षर) कहा जाता था। जुते के नाम पर घास का बना "पूला" सभी पात्र पहनते थे। इस में इस बात की समानता का विशेष ख्याल रखा जाता था कि पैर के उपरली हिस्से पर एक समान रंग हो। गण-वेश में कोई कमी होने की अवस्था में सुरजणी दण्ड्य होता था। दण्ड स्वरुप उस वक्त का चार आना उसे पड़ता था। साज सज्ज़ा का काम पूरा होने पर प्रथम पंक्ति में ठाकुर मोहरा, मेचमी मोहरा, चणमोहरा और ओयाह,तत्पश्चात ये सभी दाहिने से बायीं ओर सजते थे। द्वितीय पंक्ति डोमणी की पूर्व पंक्ति के पृष्ट भाग में होती थी। ओयाह का संकेत पाते ही वादक सभी वाद्यों को बजाते थे और प्रथम पंक्ति के सभी उसी क्रम में बड़े से पत्थर के चारों ओर बायें से दायीं ओर तीन परिक्रमा करते थे। जहां पहले पुनाह योर के समय दब कर सुरजणी आदि मर गए थे। यह उन के प्रति श्रद्धांज्जलि होती थी। चलने से पूर्व वहां योरा भी चढ़ाते थे। मेले के मुख्य स्थल की ओर जाते समय पहले द्वितीय पंक्ति तत्पश्चात प्रथम पंक्ति के उपरोक्त क्रमानुसार वे चलते थे। सब के अन्त में डन्नाशी बिना किसी प्रकार के अभिनय के पूर्ववर्तियों का अनुसरण करता हुआ चलता था।

उनके प्रस्थान का पता लगते ही मुख्य स्थल के चारों ओर घरों की छतों पर हलचल मच जाती थी। दर्शक अपने अपने स्थान को ग्रहण करने के लिए उताबले और सचेष्ट हो जाते थे। अब तक की प्रत्तीक्षा की नीरवता में सुर-संगम का सन्चार होने लगता था। उत्सुकता में तमाशवीनों की नयन-पंक्ति उधर ही उठ जाती थी। कुछ बेसबर और हठीले किशोरों को बिठाते, झिड़कते हुए मा-बाप तथा सम्बन्धी देखे जाते थे। जलूस के पहुंचने से लेकर चोग और मुखोटों के उतारने तक एक छत से दूसरे पर छलांग लगाना छत से नीचे टांगों को लटकायें रखना रखने मेला देखते हुए हाथों में काम लेकर रखना निषिद्ध होता था। उलंघन करने पर दण्ड से किसी का भी निस्तार नहीं होता था। तात्पर्य स्पष्ट ही है कि संयत होकर मनोयोग मेले का भरपूर आनन्द स्वंय ले ओरों को भी लेने दें।

मोहरें और सुरजणी बायें हाथ को कोण बनाकर कमर में रख और दाहिनें हाथ को हथेली ज़मीन की ओर लहराते हुए मुख्य स्थल की ओर जाते थे। इसी प्रकार हाथों की स्थिति बदल कर दुहराया जाता था। डोमणी की थप्पी, बांसुरी की धुन लगातार और पाऊन पर अंगूठा दबाकर घुँररुँ की ध्वनि हाथ नीचे लहराने के साथ कभी कभी होती थी। मुख्य स्थल को अब भी "सवाही" कहते हैं। प्रत्येक गांव में वहां की आवश्यकता के अनुसार खुला और तंग "सवा" होता है। सवा के एक कोने में 20 या 21 फुट घेरा लिए 15 फुट ऊंचा शंकु आकार का बर्फ का स्तूप जैसा "राश" बनाया जाता था जो शिवलिंग का आभास कराता था। इस के बनाने में गांव के लोहारों का पूरा योगदान होता था। राश के शिखर पर देवदार वृक्ष की पत्तीदार डाली खड़ी गाड़कर रखी होती थी। राश के पास पहुंच कर मेचमी मोहरा, चणमोहरा और वादक जन पूर्व निर्धारित अपने अपने स्थान पर खड़े हो जाते थे। शेष ठगुर मोहरा के नेतृत्व में राश के चारों ओर पूरे चक्कर में खड़े हो जाने पर ठगुर मोहरा अन्य दो मोहरों की पंक्ति में प्रथम स्थान पर चुपचाप आकर खड़ा हो जाता था। तब ओयाह के संकेत से सुरजणी और वह स्वंय भी धीरे-२ राश की एक परिक्रमा पूरी करते थे। सभी श्रद्धा एंव भक्ति-भाव से दोनों हाथों को जोड़कर छाती से सटा कर एक बार राश की तरफ फिर मुड़कर जनता की तरफ उछाल कर छोड़ देते थे। इस से विशेष संकेत सा मिलता था कि इस कार्यक्रम की निर्विघ्न समाप्ति के लिए इष्ट की आराधना और जनता का स्वागत करना मगंल कामना और शिष्टाचार दिखाना हो। इस अवधि में सारी क्रिया धीरे-२ तथा धुन भी धीमे रहती थी। दूसरे चरण में वे अपने तर्जनी और अंगूठा मिला कर बने गोलाकार मुद्रा युक्त दाहिने हाथ को कुहनी से 60 अंश उठा कर तथा बायें हाथ को पहले बोमणी के टक टक की आवाज़ के साथ लहरा कर फिर पाऊन के घुँररुँ सहित नीचे फैला कर छोड़ देते थे। अंगुलियों का गोलाकार अनाज का अत्युत्तम तथा हाथ को फैलाकर छोड़ना उस का भरपूर होना दिखाया जाता था। इस तरह दो परिक्रमा पूरा करने पर अंगूली में बायीं हथेली पर दायीं मुठ्ठी जिस का अंगुठा मुठी में न होकर ऊपर उठाकर अनाज कूटने का अभिनय बारी-बारी दायें-बायें कर पूरा करते थे। तदनुसार "डाल" कपड़े को फैलाकर पूर्ववत अपने दोनो पाश्वों की तरफ ले जाकर फड़काते थे, और उछाल कर एक तरफ घास को गिराते थे, दूसरी तरफ अनाज की ढेरी लगाने का काम सम्पन्न करते थे। इस क्रिया के तुरन्त बाद वाद्य-यन्त्रों का स्वर तथा सुरजणियों के हाथ-पैर तथा शरीर के अन्य अगों का हिलना उत्तरोतर शीघ्रतर एंव तीव्रतर होते जाते थे। कुछ क्षणों तक उल्लास से हाथों को उठाते गिराते और पैरों को थिरकाते हुए आनन्द-विभोर हो जाते थे। चरमोत्कर्ष पर पहुंचने के बाद फिर उसी गति से क्रमशः शनैः-२ सारा रंग-मंच शान्त सा हो जाता था। फिर ओयाह का संकेत पाकर यह नृत्य-मण्डली सहसा नीरव और निश्चेष्ट हो जाती थी। उसी समय "छमाओं" के घर से लाए "गण्डासा" नामक शस्त्र लेकर ठगुर मोहरा सवा के पश्चिम कोने पर जाता था। वहां गांव वासी से लाये हुए भेड़ के बच्चा (मेमने) को ले लेता था। प्रतिदिन और प्रतिवर्ष मेले के लिए गांव वालों को बारी

बारी देना पड़ता था। राश के पास दक्षिण से उत्तर की ओर मुंह कर के वह चढ़ाता था और खून की कुछ छींटें राश की तरफ उछाल देता था। उत्तरपूर्व कोणों में जोगणी भाई-बहन योर देखते ओर अपने बलिभाग लेने के लिए आए रहते थे। यह धारणा उस समय आम थी। इसलिए वह उधर जाकर मृत मेमने को झटकाता तथा गण्डासे को ज़मीन पर पटकाकर स्वंय या सुरजणियों से सुझाव किसी नाम पर फब्तियां कसता था प्राय: यह अश्लील शब्दावली पुरुषों के साथ जोड़ी जाती थी। ज्यों ही वह उधर जाने लगता था त्यों ही दर्शकों की भीड़ में हलचल मच जाती थी। विशेषकर स्त्रियां भीड़ से अलग और ठगुर मोहरा की नज़रों से ओझल हो जाती थी। अश्लील वाक्य उछालने के साथ ही तमाशबीनों का ठहाका गूंज उठता था। साथ ही साथ सब की नज़र उधर उठ जाती थी। कहा जाता था कि ये अव्यक्त शक्तियां गांव या गांव के किसी परिवार या किसी व्यक्ति का अनिष्ट न कर जायें; इस लिए अश्लील वारवाणों से परास्त कर लज्जित कराकर भगाने का नाटक किया जाता था। पश्चिम दिशा में न बलिभागी, न अनिष्टकारी बल्कि धामण देकर बुलाया "त्रिलोकीनाथ" देवता दर्शक मात्र उपस्थित रहता था। इसलिए वहां गण्डासा सिर के ऊपर घुमाकर नीचे धरती को छुआता था। अपने सिर को देवता के चरणों में नत करने का अभिप्राय व्यक्त किया जाता था। दक्षिण में मृत मेमने की एक टांग काट कर उधर ही फैंकते हुए झाह झाह---------- कर हाथों और टांगों से अश्लील चेष्टा करता था। उस तरफ "जाखिणी" स्त्री जो अनिष्ट कारिणी समझी जाती थी; को भगाने का उप क्रम किया जाता था। कुछ पूर्ववत अश्लील वचनों से पूर्वदिशा का काम दिखाकर मृत मेमने के शरीर और गण्डासा शस्त्र को राश के पास वर्फ के अन्दर ढक कर रख देता था। इस प्रकार आधि दैविक एवं अनिष्कारिणी विपत्तियों को दूर करता था। अब दर्शकों के मनोरञ्जन और आपस में मज़ाक का दौर चल पड़ता तो ठगुर मोहरा मेचमी मोहरा के साथ गर्भाधान के लिए रतिक्रीड़ा का अभिनय कर लकड़ी के दो टुकड़ों, जो नौ-नौ इंच लम्बी लाल रंग में रंगी, को मेचमी मोहरा के पैर के पास से निकाल कर दिखाते हुए दर्शकों को युगल सन्तान होने की सूचना देता था और आह---आह कर प्रसन्नता व्यक्त करता था। तब चारों तरफ उठे ठहाकों में युवा स्वर अधिक मुखर हो उठता था। ज़िन्दगी केवल सुख का सेज़ ही नहीं बल्कि अवरोधकों से संघर्ष करने का नाम भी है।

अभी-२ सम्भाव्य अनिष्ट आपदा से निजात पाने के लिए सफल हुआ ही था कि इतने में मानुषिक उपद्रवों ने धीरे से कदम रखना आरम्भ कर दिया। दक्षिणपूर्व कोण से दो या तीन युवक सादे लिवास में धीरे-धीरे, चुपके-चुपके उस सवा में घुसपैठ करने लगते थे जो दिन भर के लिए ठगुर मोहरा का अधिकृत क्षेत्र माना जाता था और किसी भी अन्य को प्रवेश पाने की आज्ञा नहीं होती थी। उन्हें देखते ही चणमोहर सहित ठगुर मोहरा उन्हें खदेड़ने के लिए क्रोध और वीरता की चेष्टा के साथ सवा के बीचों बीच आकर धावा बोल देता था। दोनों तरफ से बर्फ की गोलाबारी जम कर होती थी। अन्ततः घुसपैठियों का पैर जंगेमैदान से उखड़ जाता था। वह विजयी चेहरा लेकर अपने परिवार और मेचमी मोहरा के पास लौट आ जाता था। मेमची मोहरा सद्य प्रसूता होने के कारण उस का साथ दे नहीं पाती थी। फिर सारा परिवार विजयोल्लास में राश का दो चक्कर लगाते, नाचते नाचते, अंग-भंगिमा दिखाते हुए ठगुर मोहरा के नेतृत्व में पश्चिम में स्थित पचास गज़ की दूरी पर महादेव का थान (स्थान) "हड़कू" के घर की ओर लय-ताल के साथ हाथों को लहराते हुए पूर्ववत पंक्तिबद्ध चल पड़ते थे। घर के निकट पहुंचने पर पंक्ति थम जाती थी और उस का नेता ठगुर मोहरा उस घर से बीस या पचास फुट दूर स्थित बर्फ की ढेरी के ऊपर चढ़कर साफ़ बर्फ गोला बनाकर उसे, दरवाज़े के कपार पर लिखे स्वस्तिक चिन्ह पर फैंकता था। निशाना साधने पर खुशी से उछल कर आह आह के साथ घर के तल वाले कमरे में प्रवेश करता था। यह महादेव को तिलक चढ़ाकर आशीर्वाद और प्रवेश की अनुमति प्राप्त करना होता था। घर में प्रवेश से पहले वह पूर्व की ओर हाथ जोड़कर नमस्कार करना नहीं भूलता था। सुरजणी भी सिर्फ नमस्कार सहित प्रवेश कर जाते थे। राश के पास शेष वाद्य-वादकों सहित मेचमी मोहरा, चणमोहरा होते थे। मेचमी मोहरा हाथ में एक सुन्दर छड़ी (लाठी) और चणमोहरा एक हाथ में "फर" (टोकरी का बड़ा ढक्कन सा) और दूसरे हाथों में खना (दो फुट का डण्डा) लेकर वाद्यों के लय पर अपने दोनों पार्श्वों की ओर घुमाते हुए दो चक्कर पूरा करने पर मेचमी मोहरा ठगुर मोहरा की भांति सभी काम कर कमरे मे प्रवेश कर जाता था। अन्त में चणमोहरा को पूर्ववत एक चक्कर लगाकर बिना निशाना साधे ही अन्यों से मिलना होता था। थोड़ी अवधि तक वे सभी सहज हो लेते थे। सुरजणी अपने अपने चोग उतार कर चक्राकार टोपी को पहन लेते थे। मोहरे भी मुखोट्टों को उतारते थे। टोपी तो पहले ही पहनी हुई होती थी। यह समय मेले का पूर्व मध्यान्तर होता था।

(क्रमशः गत-----)

लाहौल की सांस्कृतिक अस्मिता : पूर्वाग्रह चुनौतियां और उत्तरदायित्व

❐ *अजय*

लाहुली समाज आज विकास के उस पड़ाव पर पहुंच चुका है जहां पहुंच कर प्रत्येक विकासोन्मुख समाज को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति जागरुक होना ही पडता है। अपने सांस्कृतिक पहचान की रक्षा के लिए आज शिक्षित पीढ़ी को एक साथ अनेक विरोधी और विषम चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। एक अजीब से अनिश्चय और अनिर्णय की स्थिति में जी रहें हैं हम। परम्पराओं का बोझ जब असह्य हो जाता है तो हम आधुनिकता की दुहाई देते हैं, और जब आधुनिकता समझ में नहीं आती है तो परम्पराओं का दामन थाम लेते हैं। दरअसल आज तक हम ऐसा दृष्टिकोण ही विकसित नहीं कर पाए हैं जो परम्परा और आधुनिकता के बीच प्रतीत होने वाले इस विरोधाभास का अतिक्रमण कर सके। वास्तविकता यह है कि हमारी परम्परा का आधुनिकता के साथ कोई विरोध नहीं रहा है।

जब तक हम संस्कृति, परम्परा और आधुनिकता के बारे अपने पूर्वाग्रहों और भ्रामक धारणाओं से निजात नहीं पा जाते, अपनी अस्मिता को खोते ही जाएंगे क्योंकि तब तक अपनी चुनौतियों और जिम्मेवारियों को हम ठीक से समझ नहीं पाएंगे।

बड़े खेद की बात है कि हम अपनी भौतिक उपलब्धियों के मौलिक कारणों का सही-सही आकलन नहीं कर पा रहें हैं। यह सच है कि हमारी पिछली पीढ़ियों ने सख्त हालातों से जूझने के लिए आर्थिक ज़रुरतों के अनुकूल एक सामाजिक ढांचा खड़ा किया था जिस का हमारे आर्थिक विकास में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ में एक स्वस्थ "वर्ककल्चर", सरकारी प्रोत्साहन इत्यादि भी कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेकिन ये सब तब तक निरर्थक साबित होते जब तक कि हमें अपनी सामाजिक और धार्मिक उदारता का बल प्राप्त नहीं होता। जहां तक मैं समझता हूं हमारी उन्नति का मूल कारण उदार मानसिकता ही रही है।

हम विकास इस लिए कर पा रहे हैं कि प्रत्येक नई चुनौती को स्वीकार करने का दमखम हम में है। बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं अभी हाल ही के 50 वर्षो के इतिहास में हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जब हम ने भौतिक आवश्यकताओं के हित में बड़ी से बड़ी परंपरागत प्रथा और संस्था की उपेक्षा की है। वह संस्था या प्रथा चाहे सामाजिक रही हो या धार्मिक हम उसे ठोकर मार देने से कभी नहीं हिचके। विकास के पथ पर हमने कभी भी धर्म, समाज और संस्कृति को आड़े नहीं आने दिया। आरम्भ में हमारी परम्परा में आधुनिकता का यह तत्व विद्यमान रहा है। उस ने समय के साथ स्वंय को बदलना जाना है। इसी स्वस्थ परम्परा के चलते आज हम इस काबिल हो सके हैं कि कम से कम हमें अपनी अस्मिता के संकट का आभास हो रहा है।

निस्सन्देह, इधर कुछ वर्षो से अन्धानुकरण तथा अति भौतिकतावादी प्रवृतियों ने हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को चोट पहुंचाई है। आज यह आवश्यक हो गया है कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए कुछ ठोस कदम उठाएं और बाहरी संस्कृतियों की हो रही अनावश्यक घुसपैठ को रोकने का बन्दोवस्त करें। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या यह कार्य उतना सरल और सीधा है जितना कि दिखता है? क्या हम उन खतरों से भली भांति अवगत हैं जो इस गम्भीर उत्तरदायित्व को निभाने में उत्पन्न हो सकते हैं? हम विश्व भर से सीख ले सकते हैं कि अस्मिता के प्रश्न के साथ बिल्कुल समानान्तर ही अलगाववाद की समस्या भी खड़ी हो जाती है। मैं किसी आन्दोलन के विरोध में कहकर किसी को हतोत्साहित करना नहीं चाहता। मैं भी यही चाहता हूं आन्दोलन चले। लेकिन सर्वप्रथम हमें अपनी प्राथमिकताएं तय करनी पड़ेगी। परम्परा, आधुनिकता और सांस्कृतिक धरोहर को परिभाषित करना पड़ेगा। उपलब्ध प्रचार माध्यमों के जरिए एक बहस शुरु करनी होगी कि हम क्या चाहतें हैं और उसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

क्योंकि अभी तक यह तय नहीं हो पाया है कि विरासत में जो संस्कृति हमने पाई है उसमें से त्याज्य क्या है और ग्राह्य क्या हैं। बाहरी संस्कृतियों से भी क्या अपनाने योग्य हैं और क्या रोकने योग्य है? कहीं सांस्कृतिक विरासतों को बचाने की आड़ में हम कुछ निरर्थक हो चुकी प्रथाओं और संस्थाओं का समर्थन मात्र तो नहीं कर रहे? या फिर अज्ञानतावश कुछ अनावश्यक बाहरी तत्वों को अपनी सांस्कृतिक विरासत समझ उन्हे चुपचाप अपनाते जा रहें है? ऐसा भी हो सकता है कि बाहरी घुसपैठ को रोकने की जिद में हम वह सब रोके जा रहे हैं जो आज के युग में हमारे लिए विरासत ही आवश्यक हो! अगर ऐसा हो रहा है तो यह हमारे सांस्कृतिक संकटों को और भी उलझाने की बात होगी। ऐसी रुढ़िवादियों से हम अपनी परम्परा को बचा तो क्या पाएंगें उल्टे उसी की हत्या कर

डालेगें। क्योंकि हमारी परम्परा ने हमेशा प्रासंगिक को ग्राह्य और अप्रासंगिक को त्याज्य माना है।

उदाहरण के लिए संयुक्त परिवार प्रणाली, बहुपति प्रथा तथा राक्षस विवाह जैसी लुप्त होती प्रथाओं के हिमायती आज भी बहुत मिलेगें। ये प्रथाएं किसी समय हमारी आर्थिक मजबूरियों से उपजी थीं और आज भी कहीं कहीं चलन में हैं तो उन्हीं कारणों से। विश्व भर में आज संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा है तो उस के कुछ ठोस कारण हैं। आधुनिक व्यक्ति की आंकाक्षाएं संयुक्त परिवार के सीमित दायरों में बंधें रहकर पूरी नहीं हो सकती। इसलिए विघटन अनिवार्य है। और यह विघटन खूनी बंटवारों के रुप में न हो कर आपसी सूझबूझ के साथ शांति पूर्वक हो रहा है तो इस में हाय तौबा मचाने की क्या आवश्यकता है? जब कि इस विघटन से न तो हमारी अस्मिता को खतरा है न ही विकास में बाधा पड़ रही है। और जब संयुक्त परिवार ही समाप्त हो रहे हैं तो बहुपति प्रथा को जीवित रखने का कोई तुक नहीं है। राक्षस विवाह हमारे घिनौने अतीत के कुछ असभ्य और बर्बर प्रथाओं का अवशेष है जो किसी भी कीमत पर बचाए रखने योग्य नहीं है।

हमारी संस्कृति पर बाहरी आक्रमणों में से सब से घातक आक्रमण "छद्म हिन्दूवाद" का है। ठीक है, आदि काल से ही हमारी संस्कृति पर हिन्दू धर्म का प्रभाव रहा है। शिव-शक्ति, राम-कृष्ण यहां सदियों से पूजे गये हैं। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर नव-जागरण काल में "केलेण्डर छाप" साम्प्रदायिक हिन्दूवाद की घुसपैठ यहां हुई है वह चिन्तनीय है। बहुत सारे लोग राष्ट्रीय मुख्य धारा में स्वयं को "आईडेन्टिफाई" करने के लिए दहेज प्रथा और जाति प्रथा जैसी कुरीतियों को और भी अधिक बढ़ावा देने के पक्ष में हैं। यह लज्जाजनक बात है। धर्म कोई भी बुरा नहीं होता, लेकिन जब तक वह सम्प्रदाय के रुप में है, समाज के लिए घातक है। क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से अभी तक हमारी संस्कृति शैशवावस्था में है। अभी यहां एक आध्यात्मिक समझ विकसित करने में वक्त लगने वाला है। ऐसे में इस प्रकार के साम्प्रदायिक "कल्ट" हमारी शिशु-संस्कृति को दिग्भ्रान्त कर सकते हैं। हमारी संस्कृति के लिए धर्म का मतलब है आस्था, और हमारी सहज स्वाभाविक आस्था किसी पोस्टर छाप भगवान से कहीं अधिक हमारे अपने स्थानीय देवी-देवताओं पर ही है। यही आदि देवता हमारी धार्मिक आस्था के वास्तविक प्रतीक हैं।

कितने मज़े की बात है कि राजा घेपन का आधुनिक हिन्दी शैली का मन्दिर आज आम आदमी को उतना उन्मादित नहीं कर पाता जितना कि उसके सजे-संवरे शहतीर की शाही जुलूस और नगाड़ों, रणसिंघों तथा शंख-घड़ियालों की कर्णभेदी गूंज। राजा घेपन लाहुल की सांस्कृतिक अखण्डता और धार्मिक सद्भावना का जीवन्त प्रतीक है जो हर तीन साल बाद सभी स्थानीय देवी-देवताओं से भेंट करने के लिए बाहर निकलता है। आदि देवों पर प्रगाढ़ आस्था का एक सुन्दर उदाहरण गुरु घंटाल के प्रख्यात मंदिर में देखने को मिलता हैं। इस मंदिर का संचालन लम्बे अरसे से लद्दाख के एक बड़े बौद्ध मठ के लामाओं द्वारा होता रहा है । यहां की सभी प्रतिमाएं बौद्ध विद्वानों और तांत्रिकों की हैं। मुख्य प्रतिमा अवलोकितेश्वर की है जिसकी प्रमाणिकता भी संदिग्ध बताई जाती है। यहां सारा कर्म काण्ड तांत्रिक बौद्ध धर्म की पद्धति से ही होता है। लेकिन आम आदमी उसे आज भी रिखि (ऋषि?) कंडाड़ नामक आदि देव का मन्दिर ही मानता है और उसी रुप में उस की पूजा भी करता है। इस आदि देव की एक मात्र बची हुई निशानी शायद वह नगाड़ा है जो कुछ साल पूर्व तक मुख्य मन्दिर की परिक्रमा में उपेक्षित सा पड़ा होता था आज पता नहीं कहां है? त्रिलोकीनाथ का प्रसिद्ध शिवालय हमारे धार्मिक सह अस्तित्व का प्रतीक है। जहां आर्य अवलोकितेश्वर की भव्य मूर्ति रहती है। इस शिवालय में पुजारी भी है और लामा भी। यह शिवालय अपना अस्तित्व आज तक इसलिए बनाए रख सका है कि इसमें किसी साम्प्रदायिक धर्म की अपेक्षा विशुद्ध लोक शैली की पूजा पद्धति पर बल दिया जाता है।

आज यह सभी तीर्थ अपने पुराने रुप को खोते चले जा रहे हैं। साम्प्रदायिकता धीरे-धीरे इनमें घुस रही है। क्या हम इन अमूल्य धरोहरों को सड़क छाप बनने से रोक पाएंगें? मेरा उद्देश्य किसी सम्प्रदाय विशेष की निन्दा करना नहीं है लेकिन संस्कृति के ठेकेदारों का ध्यान उन धरोहरों की ओर दिलाना है जिसे जनसाधारण ने अपने दिलों में सुरक्षित रखा है लेकिन वे इन अनमोल विरासतों की उपेक्षा कर एक नए किस्म का सम्प्रदायवाद लोगों पर लादने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसे में अस्मिता का साक्षात्कार कैसे संभव है?

तिब्बती लामा वाद और "गोम्पा आरिऐन्टड" बौद्ध सम्प्रदायों की घटती लोकप्रियता पर शोर मचाना आज व्यर्थ है। शायद इस का कारण यह है कि बौद्ध संस्कृति को मजबूरन हम झेल रहे थे। क्योंकि उस से बेहतर हमारे सामने कोई दूसरा आदर्श न था। ठीक है सदियों से हम बौद्ध संस्कृति से प्रभावित होते रहे हैं। वास्तव में लाहुली समाज को कबायली जीवन स्तर से कुछ ऊंचा उठाने में मुख्य रुप में तिब्बती या प्रकारान्तर से बौद्ध संस्कृति का ही हाथ रहा है। हम उसके आभारी हैं। कभी अंधेरे लाहुल में लामावाद बुद्ध वचनों का दीपक लेकर आया था। लेकिन आज का लाहुल उजाले में है। ठीक है बौद्ध कलाएं और साहित्य जो लामावाद की बदौलत हमें प्राप्त हुए हैं उन्हे सुरक्षित करना बल्कि

उन्हे निखारना और समृद्ध करना हमारा सांस्कृतिक कर्त्तव्य है। लेकिन यह सब करने के लिए सर मुडंवाकर मठों की शरण में जाना आवश्यक नहीं। एक बात आज हम शिक्षित लाहुलियों के मन में स्पष्ट होनी चाहिए कि धर्म का मतलब मठ-मंदिर, व्रत नियम, कर्मकाण्ड, तन्त्र-मन्त्र नहीं है। एक पाश्चात्य यात्री अगर इस सब से आकर्षित होता है तो इसे महज़ उसकी जिज्ञासा समझनी चाहिए या उसका आध्यात्मिक भोलापन।

यहां मैनें कुछ महत्वपूर्ण लेकिन उपेक्षित मुद्दे उठाएं हैं ताकि हम अपनी संस्कृति के बारे में भ्रमित न रहें। और उन खतरों से परिचित हो जाएं जो निकट भविष्य में हमारे सामने उत्पन्न हो सकते हैं। वर्ना इस तरह के पूर्वग्रह और हठ धर्मिताएं हमें एक ऐसे रुढ़िवादी और कट्टर पंथ में घसीट सकती हैं जिसमें से विश्व की सभी सभ्य और विकसित संस्कृतियां आज तक उबर नहीं पाई हैं।

जनचेतना

साक्षरता, शिक्षा एवं जागरुकता

❐ *रुप सिंह ठाकुर, रा० व० मा० पा० मनाली*

आज के कम्पयूटर एंव तेज रफ्तार के युग में अगर हम अनपढ़ या निरक्षरता के बारे में सुनते हैं तो कुछ अटपटा सा लगता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भारत 47 वर्षों की स्वतन्त्रता के पश्चात भी पूर्ण साक्षरता का दर्जा हासिल नहीं कर पाया। हमने प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की मगर न जाने क्यों शिक्षा के क्षेत्र में साल दर साल पिछड़ते जा रहे हैं। आज लगभग नौ देशों के सामने यह समस्या मुंह खोले खड़ी है, जहां निरक्षरों की संख्या पूरे विश्व में सबसे अधिक है। भारत विश्व का सबसे बड़ा आबादी वाला दूसरा देश है। हमारे देश में लगभग 40 करोड़ लोग इस अभिशाप से मुक्त होने के लिए छटपटा रहे हैं। सरकार नई से नई योजनाएं बनाती आ रही है लेकिन क्रियान्वयन तक सभी मानों थक से जाते हैं या कार्यक्रम उन लोगों तक पहुंच ही नहीं पाता वास्तव में जिन के लिए वह होता है। इस प्रकार इस अभिशाप से मुक्त होने या निजात पाने के लिए नई शिक्षा नीति को आचार मान कर राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का गठन किया गया।

वर्ष 1985 में भोपाल में गैस त्रासदी में हज़ारों बेगुनाह लोगों के मारे जाने पर रोष व्यक्त करने के लिए 7 नवम्बर 1987 को भोपाल में चार हज़ार से अधिक अध्यापक, वैज्ञानिक, कार्यकर्ता रैली के रुप में इकट्ठे हुए और उस में भारत जन विज्ञान जत्था जो वर्ष 1987 में प्रौद्योगिकी एवं संचार परिषद के सहयोग से बनाया गया, जो पच्चीस हज़ार किलो मीटर से अधिक दूरी तय करके 500 से अधिक भारत के विभिन्न गांवों, कस्बों में प्रदर्शन करते हुए विशाल रैली में शामिल हुए। इसी प्रकार के जत्थे हिमाचल प्रदेश में भी चले जिन्होंने प्रदेश के विभिन्न ज़िलों में अपना कार्यक्रम दिखाया। जिसका एक मात्र उद्देश्य विज्ञान के बारे में चेतना जगाना था। भारत जन-विज्ञान जत्था सच्चे अर्थो में एक राष्ट्रीय घटना थी।

साक्षरता मिशन और इस घटना को लोकप्रिय बनाने के लिए तथा जन आन्दोलन के माध्यम से अनपढ़ लोगों में ज्ञान की भूख पैदा करने के लिए भारत विज्ञान जत्था को आयोजित करने का मुद्दा राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में उठाया गया जिसे कार्यकारिणी ने स्वीकृति प्रदान कर दी। इस प्रकार भारत ज्ञान विज्ञान समिति का गठन 1990 में किया गया जिसे अन्तरार्ष्ट्रीय साक्षरता वर्ष के रुप में मनाया गया। भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने राष्ट्रीय एकता तथा आत्म निर्भरता के लिए विज्ञान और साक्षरता का नारा देकर मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के सहयोग से समाज के विभिन्न वर्गों, छात्रों, अध्यापकों, युवाओं व दूसरे लोगों को संगठित किया। जिसके अन्तर्गत

लगभग 300 प्रमुख कला जत्था और करीब 1800 लघु दलों का भी गठन हुआ। इस समय देश के 470 ज़िलों में से 200 ज़िलों में साक्षरता अभियान चल रहा है जिसमे 100 ज़िले उत्तर साक्षरता के चरण में है। इस अभियान को पूर्णतया स्वयंसेवी भावना से चलाया जा रहा है। इसमें किसी भी स्वयंसेवी को पैसे व मानदेय का प्रलोभन नहीं दिया जाता। इस अभियान से पहले भी सरकार ने कई कार्यक्रम चलाए जैसे हर एक को पढ़ाएं, प्रौढ़ शिक्षा इत्यादि। लेकिन ये कार्यक्रम असफल रहो। मगर साक्षरता अभियान उन सभी दोषों से मुक्त है। ग्रामीण स्तर से लेकर जिला स्तर तक का सम्पूर्ण ढांचा स्वयंसेवी भावना को ध्यान में रख कर गठित किया गया है। तथा आम जनता की भागेदारी को भी सुनिश्चित किया गया है, ताकि कार्यक्रम जनता की मनोभावना से जुड़ कर वांछित लक्ष्य की ओर बढ़े।

इस अभियान से चमत्कारिक परिर्वतन देखने को मिले हैं। जहां लोग परस्पर विवाद, लड़ाई-झगड़ा व मुकद्दमों में अपना अधिकांश समय बर्बाद करते थे वहां अब विकास के कार्यों में संगठन बनाकर आगे आ रहे हैं। सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन में भी काफी परिर्वतन देखने को मिल रहा है। इस कार्यक्रम का सबसे अधिक विरोध पढ़े लिखे वर्ग की तरफ से हुआ है। आप स्वयं देखें कि आज अगर हमारा पढ़ा लिखा वर्ग जब ऐसी बातें करेगा तो कौन रचनात्मक कार्यों को स्वयंसेवी आधार पर करने के लिए आगे आएगा। शायद उत्तर होगा कोई नहीं। परन्तु ऐसा नहीं हैं। देश में आज हज़ारों मैडिकल डाक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक, अध्यापक, वकील, प्रशासनिक अधिकारी, वन अधिकारी आदि स्वेच्छा से स्वयंसेवी भावना के आधार पर आगे आ रहे हैं।

हिमाचल प्रदेश के सभी ज़िलों में यह कार्यक्रम 12 जून 1992 को शुरु हुआ जब देश के तत्कालीन राष्ट्रपति आर० वैंकटरमन ने 'साक्षर ज्योति' प्रज्वलित की थी। यह ज्योति बाद में 12 जिलों में ले जाई गई और कार्यक्रम ज़ोरों से शुरु हुआ। प्रारम्भ में लोगों ने इस कार्यक्रम के प्रति कोई विशेष उत्साह नहीं था। बाद में धीरे-२ यह कार्यक्रम जन अभियान का रुप धारण करने लगा तथा लोग खुद इस से जुड़ने लगे। जो विरोध में बोल रहे थे या तो वे भी जुड गए या चुप हो गए।

आज हमारे प्रदेश के बयालिस विकास खण्डों में साक्षरता अभियान के प्रथम चरण को पूरा किया जा चुका है और शेष विकास खण्डों में भी कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है। इस साक्षरता अभियान का दिलचस्प पहलू यह है कि इस में महिलाएं ज़ोर-शोर से आगे आ रहीं है। अधिकांश साक्षरता घरों में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं ने रुचि अधिक दिखाई है। यह सुखद संयोग है कि दिन भर की थकान के पश्चात भी महिलाएं व्यापक संख्या में कक्षाओं में हिस्सा ले रहीं है।

वास्तविक अर्थों में साक्षरता का सम्बन्ध शिक्षा एंव जागरुकता से ही है। यदि हम इस कार्यक्रम को इसी सफलता के साथ आगे बढ़ाने में सक्षम होते हैं, तो निश्चित रुप से 21वीं सदी की दहलीज़ पर जब हम पहुंचेगे तो हम अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर पाएंगे, जिसमें सब को शिक्षा की बात की जा रही है।

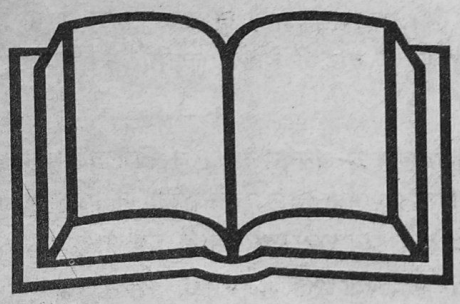

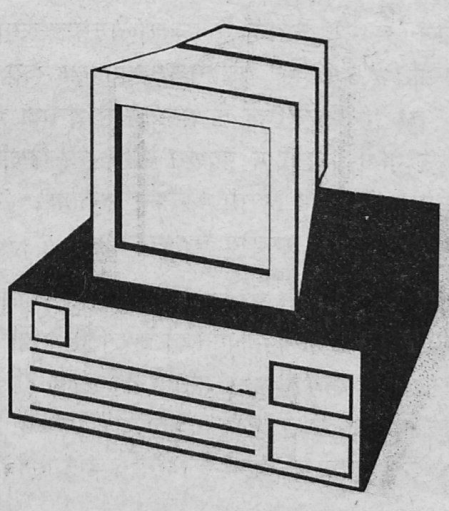

HETPO

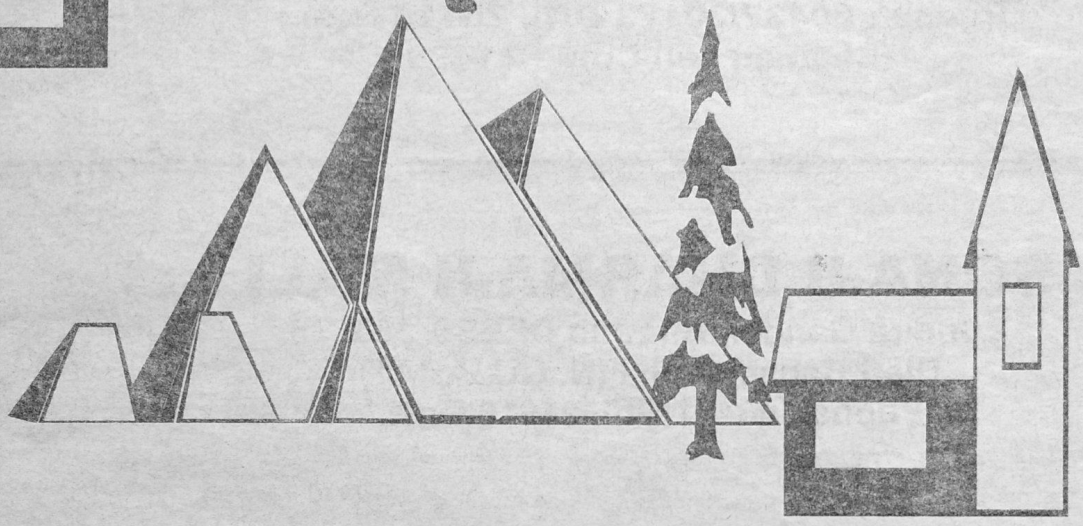

Himachal Eco-Tourism

Promotion Organisation

Post Box No 99 Head Office
Manali Distt. Kullu (H.P.) 175131
Phone (01901) 3059